Index

१. रण-भूमि
२. उतराधिकार
३. खाना-पुरी
४. दहशत गर्द
५. नील-कण्ठ
६. बदली
७. कौरव-सभा

(हिंदी अनुवाद : शाकिर पुरुणार्थी)

रण-भूमि

पंजाबी कहानी : मित्तर सैन मीत
हिंदी अनुवाद : शाकिर पुरुणार्थी

आजकल की बदली हुई परिस्थितियों में, बलदेव को चंडीगढ़ गए पांचवां दिन था। न कोई कुशल-सूचना, न कोई खबर-समाचार। प्रतीक्षा करते-करते सारे परिवार की आंखें पक गई थी।

देवी-देवताओं के चित्रों के सन्मुख मस्तक रगड़ती, घंटिया बजाती, पीरों-फकीरों का स्मरण करती और दिन भर माला के मनके फेरती, बूढ़ी मां, देवताओं पर और स्वयं पर खीझ-खीझ उठती। उसी निगोड़ी थी जिद ने ही बलदेव को चौरासी के चक्कर में डाल दिया था। बुढ़िया की समझ में नहीं आ रहा था-राधा पंडित के उपाय, शास्त्री के तावीज, मौलवी की झाड़-फूंक, गीता के पाठ, पीरों-फकीरों और देवी-देवताओं की मन्नतें, सबकी सब सार्थक क्यों नहीं हो रही थी। कान पकड़ती हूं मैं तो। अब की बार सुख-शांति से घर लौट आए-फिर कभी वह बलदेव को बदली कैंसिल कराने के लिए नहीं भेजेगी।

किसे ज्ञात है कि सुबह, सही सलामत घर से निकला, वह शाम को घर लौट भी आएगा अथवा नहीं। क्या मालूम कौन से मोड़ पर बस रोक ली जाए। अपनी पसंद के लोगों को उतार लिया जाए और बाल बच्चों के देखते-देखते उनके खून से होली खेल ली जाए। क्या मालूम, कौन से पुल पर सीआरपी किसी को रुकने का इशारा करे? ब्रेक अनुपयुक्त होने के कारण वह आगे बढ़ने की गुस्ताखी कर बैठे और उनकी गोलियों का शिकार होकर खौफनाक उग्रवादियों की श्रेणी में नाम लिखा बैठे।

इसी मानसिकता का शिकार चन्नीं पुनः-पुनः दहलीज पर आ खड़ी होती और अपने आपको कोसने लगती। पितृ-तुल्य भैय्या को यदि कुछ हो गया तो सारा भांडा उसी के सिर आ फूटेगा। उसी ने अपने मृत पति और छह महीने की बच्ची की दुहाई देकर उसे तरनतारन ड्यूटी पर हाजिर होने से रोका था। अभी तो सतिन्दर की चिता भी ठंडी नहीं हुई थी। ऐसा न हो कोई और चिता जल उठे। तब क्या बनेगा? क्या बनेगा-उसका, उसकी दूध पीती बच्ची का, बूढ़ी मां और बलदेव के बच्चों का? सतिंदर के मरते ही उसका बसता-रसता घर क्षत-विक्षत हो गया। बूढ़ा ससुर कर्ज़्यू में दम तोड़ गया। नित्य-प्रति की धमकियों से तंग आकर उसका जेठ घर पर ताला डालकर दिल्ली के किसी मंदिर में जा विराजा। उसके पास अपने कुटुंब को पालने का पेट भरने का वसीला नहीं रहा था, विधवा भावज और बच्ची का भार वह कैसे वहन करे। हाथ में बीस हजार का सरकारी चैक और बगल में बच्ची को उठाकर वह बलदेव का दरवाजा न खटखटाती तो जाती भी किधर? उसके नित्य-प्रति के विलाप ने ही तो बलदेव को चंडीगढ़ भिजवाया था। उसकी काली परछायीं ने कहीं बलदेव को ही ग्रस लिया तो वह किसी के भी मुंह लगने योगय नहीं रहेगी।

सरोज को बलदेव की अनुपस्थिति खल तो रही थी, किंतु वह आतंकित नहीं थी। वह किसी बेगाने के साथ नहीं, गुरु समान मित्र सुरजीत के साथ गया था। सुरजीत की मुज़्यमंत्री तक इतनी रसाई थी कि जो चाहे हाथ पकड़कर लिखा लाए। और फिर बलदेव कौन सा नियुक्त डीसी है। एक नगण्य सा अध्यापक ही तो है। डीईओ ने मालूम नहीं डीपीआई को कैसी पट्टी पढ़ाई थी कि सुरजीत की ओर से तीन वजीरों के टेलीफोनों का भी उस पर असर नहीं हुआ था। बल्कि वह तो मुज़्यमंत्री की शिकायत की रट लगाए रखता। वे मुज़्यमंत्री के चुनाव हल्के के लोग हैं। क्या पता मुज़्यमंत्री को सचमुच ही कोई गिला रहा हो? सोचकर वजीरों की बड़ मांद पड़ जाती और फिर सुरजीत से मुज़्यमंत्री कब विमुख है। वह चाहे तो किसी को भी चेयरमैन नियुक्त करा दे। यदि सुरजीत मुज़्यमंत्री को छोड़कर उनके पास आया है तो कोई गड़बड़ अवश्य है।

उधर, मुज़्यमंत्री था कि चंडीगढ़ में उसका पांव ही नहीं पड़ता था। एक टांग दिल्ली में होती दूसरी पटियाला या अमृतसर। कभी ड्राडी कमिशन की रिपोर्ट का झमेला, कभी बिखर रही पार्टी को संभालने की चिंता और कभी उग्रवादियों के हाथों मारे गए लोगों के परिवारों के आंसू पोंछने और चैक भेंट करने की रस्म।

वे चंडीगढ़ पहुंचते, मंत्री महोदय दिल्ली को चल देते। वे वापस लौटते मंत्री जी चंडीगढ़ आ पहुंचते। इसी लुका-छिपी में उनके चार चक्कर लग चुके थे। इस बार उन्होंने निर्णय लिया था कि वे काम कराकर ही लौटेंगे, भले ही वहां बीस दिन बैठना पड़े। सरोज को मालूम था, काम बना नहीं होगा। हुक्म हो गया होता तो वे गोली की तरह घर को लौटते। वह कौन सी नोटों की गड्डी साथ लेकर गया है कि बैठे खाते-पीते रहेंगे। मात्र हजार रुपये थे उसी की गिरह में।

बलदेव की कार ने जब घर के सामने आकर ब्रेक लगाई तो सभी ओर भगदड़ मच गई। खुशखबरी सुनने के लिए सारा परिवार चबूतरे पर आ खड़ा हुआ।

किंतु सिर न्यौहड़ाए बलदेव ने जब बैठक में प्रवेश किया तो सबके चेहरे पीले पड़ गए। बलदेव बिखरे बाल, छोटी-छोटी दाढ़ी में चमकते मिट्टी के कण, कॉलरों पर जमी हुई मैल और माथे की त्यौरियों को देखकर किसी को कुछ भी पूछने की जरुरत नहीं थी।

मुंह बिसोरे, चन्नी जल-पान की व्यवस्था करने रसोई घर में चली गई। सरोज कार के किराए का प्रबंध करने के लिए ट्रंक-पेटियां टटोलने लगी। उसे पता था, हजार रुपया तो कब का उड़ चुका होगा। चंडीगढ़ को प्रस्थान करने से पहले उन्होंने बार-बार मंत्री के वहां रहने की तसल्ली कर ली थी। उन्हें विश्वास था कि शाम तक आर्डर लेकर लौट आएंगे। क्या पता था कि जाते ही किसी पूर्व मंत्री की हत्या का समाचार मिलने को था और मुज़्यमंत्री को संस्कार के लिए चले जाना था। वहीं पर उन्हें मंत्री-मंडल की संभावित अन्त्येष्ठी की भिनक पड़ी तो वे मंत्रियों का जहाज लादकर दिल्ली को प्रस्थान कर गए।

एक-एक करके मुज़्यमंत्री जी का पांचवा दिन था दिल्ली में टिके हुए। हनुमान की पूंछ की तरह मंत्री जी का दिल्ली का दौरा बढ़ता ही जा रहा था। जब बिल्कुल जेब खाली हो गई तो लौटने के सिवा उनके पास कोई विकल्प नहीं रहा था। खैर से सुरजीत उस होटल का पक्का ग्राहक था, अत: उन्होंने थोड़ी बहुत रियायत भी की और थोड़ा बहुत उधार भी।

अब कार वाले से उधार सुलभ नहीं था। मजदूर लोग हैं, वहीं कमाना, वहीं खाना।

सात-आठ सौ से अधिक का प्रबंध न होता देखकर, सरोज बलदेव को इशारा करने को विवश थी। बैंक की कापी में तो मात्र पांच रुपये शेष थे। महीना भर से गैर-हाजिर था, अत: पगार का प्रश्न ही नहीं उठता था। दूधवालों से पेशगी लेकर उसने घर का खर्चा चलाया था। वे भी तो उन जैसे ही नौकरीपेशा रहे थे। बार-बार कहां से दिया करें।

सुरजीत को अकेले बैठा देख मां से रहा नहीं गया। हालात का जायजा लेने को वह सुरजीत के पास आ बैठी।

'क्यों बेटे, फिर मिला नहीं वजीर? क्या हुआ बदली का? निपूता अफसर ऐसा पीछे पड़ा है कि उलटे दिन आ गए हमारे।'

सोफे से पीठ सटाए और टांगे मेज पर टिकाए ऊंघ रहा सुरजीत बुढ़िया के बोल सुनकर सपकाया।

'तुम चिंता मत कर मां। जितनी देर मैं बैठा हूं, बलदेव का कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता। जिस दिन भी मंत्री मिल गया, सीने में घुटना देकर काम कराऊंगा।'

बुढ़िया की भीतर धंसी आंखों में नमी देखकर सुरजीत भी बिलख उठा। अपनी लज़्बी दाढ़ी पर हाथ फेरकर और मुंझों को ताव देकर उसने अपने आप को संभाला और बुढ़िया का साहस बढ़ाने के लिए गरजा

'....मैं उस बेईमान अफसर को भी झोटियां चुंघाकर रहूंगा। यदि उसने गुरदासपुर के आर्डर न कराए तो मुझे सुरजीत न कहना..।'

इस बार मां ने सुरजीत की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। धीरे-धीरे उसकी आंखें मुंद गई। उसके दाएं हाथ में पकड़ी हुई माला के मनके तेजी से ऊपर-नीचे सरकने लगे।

सुरजीत की निगाहें बुढ़िया की आकृति से फिसलकर सामने दीवार पर रखे लैनिन के बुत से टकराई।

'अभी तो तुम बलदेव को झोटियां चुंघा रहे हो..।' सुरजीत को लगा जैसे लैनिन का गुसैला चेहरा उसे घूर रहा हो।

साथ वाले कमरे में हो रही खुसर-फुसर भी बलदेव को झंझोड़ने लगी। वह कोई बच्चा तो था नहीं जो समझ न पाता कि यह भागदौड़ किस प्रयोजन के लिए हो रही है। सारा जोर लगाकर भी वे किराया संजो पाने में सफल नहीं हो पा रहे थे।

किराए के लिए चल रहे संघर्ष को देखकर बलदेव को लगा जैसे पंद्रह साल के पश्चात उसके हाथों एक और कत्ल हुआ हो। इस बार किसी बेगाने का नहीं, बल्कि पुत्रों, भाइयों और पिता समान बलदेव का.. उसके सहारे संघर्षरत परिवार को आशाओं का.. उनके सुखद भविष्य का।

वह भी जमाना था, जब एक उज्वल भविष्य और श्रेणी रहित समाज का स्वप्न लेकर सुरजीत भूमिगत हुआ था। दिनों में ही अपने साहस, सूझबूझ और कार्य कुशलता के फलस्वरुप वह दो जिलों का व्यवस्थापक बन गया था। एसएसपी की पढ़ाई बीच में ही छोड़कर बलदेव ने होस्टलों में आयोजित महफिलों की गिनती बढ़ाने के लिए दिन-रात एक कर दिया था। एक समय ऐसा भी आया जब सारी यूनिवर्सिटी ही आलंकित हो गई। जब बलदेव उसे बेटों जैसा लगता था। अपना सही उतराधिकारी। कितने ही नौजवानों को लेकर, बलदेव सुरजीत के साथ आ मिला था। रोहियों में सांपों के सिरों को रौंदता, झोंपडियों में चीथड़ों पर सोता, भूसे वाले खोटों में दिन-दिन भर कलासें लगाता, तपती भट्ठियों के आगे खड़ा होकर मजदूर संगठन स्थापित करता। बलदेव उसे अपनी दाहिनी बांह प्रतीत होता। बराबर का सहयोगी।

'न तो मैं दो चार सौ रुपये महीना सूद लेने वाले दुकानदार को पूंजीपति समझता हूं और न ही सीरी (सहकर्मी) रखकर खेती करने वाले को जागीरदार..।' कहता हुआ बलदेव जब हथियार लेने से पीछे हटा था, तो उन्होंने उसे डरपोक और बुजदिल कहकर धुतकार दिया था। पश्चात बीसियों कत्लों के केस भुगतता सुरजीत जब जेल की काल कोठड़ियों में सड़रहाया तो बलदेव की बातों से उसे विवेकशील पिता जैसी प्रतिभा का आभास होता था।

ऐसे साथी का दस हजार कारों होटलों और व्हिस्की पर नष्ट करवाकर इन दिनों सुरजीत किस प्रकार की लोक सेवा में लगा था।

इंकलाबियों की पोलिट ब्यूरो तक पहुंचते-पहुंचते सुरजीत तो जेल से जत्थेदार बनकर निकला, किंतु बाहर बैठे बलदेव की लड़ाई उसी प्रकार जारी थी।

चाहता तो वह एफसीआई में जाकर लाखों कमा सकता था। एक आध रहस्य उगल कर थानेदार भर्ती हो सकता था। किंतु अध्यापक बनना ही उसे उचित लगा। सारे जीवन में दो चार बूटे भी रोप दिए तो यह उसकी उपलब्धि होगी.. वह कहा करता।

उपलब्धि के उसके यही प्रयास अफसरों और धार्मिक जत्थेबंदियों की आंखों में खटकने लगे।

'यह तो बच्चों को उलटी शिक्षा देता है। नास्तिक और अधर्मी बनाता है।' पंचायत की ऐसी ही एक शिकायत पर उसे स्कूल से उठाकर दज़्तर में नियुक्त कर दिया गया था।

नए आए डीईओ को उसकी क्लर्की भी नहीं सुहाती थी। उसकी क्या मजाल कि वह अज़्सर की भैंसों के लिए सोयाबीन का तेल और दलिया की बोरियां नहीं भेजे। इस बूते पर तो उसने पिछले स्टेशन पर एसडीएम और जजों को खुश करके लाखों के काम निकलवाए थे। यह नहीं तो उसकी पत्नी के लिए विशेष रुप से मंगवाई हुई दवाइयों के बिल

पास करना तो उसका नैतिक कर्तव्य रहा था। अन्यथा इस जैसे फंड क्या आग में झोंकने को होते हैं? किसके पास समय है कि स्कूलों में बैठकर भट्ठी चढ़ाए और पंजीरी बनाकर बच्चों को खिलाए। पंद्रह बीस दिनों के बाद दलिया से बच्चों का थैला भ र देने की ुसकी स्कीम पर बलदेव ने भैंसे की तरह सिर हिला दिया था। सीईओ के लेखक मित्रों की पुस्तकों पर 'साञ्प्रदायिक' और 'पक्षपाती' लिख देना तो गुस्ताखी की पराकाष्ठा ही थी।

दोनों अफसरों ने विचार-विमर्श किया। तीन दिन तक चंडीगढ़ में बैठकर स्वंय उसकी तबादले की फाइल तैयार करवाई। जब तरनतारन पहुंचेगा तो खुद ही नानी याद आ जाएगी। यहां बैठा ट्यूशनें करता है, दूध बेचता है, तभी इतना इतराता फिरता है। इस जैसे विद्रोही बीज का दज़्तर में पनपना किसी के लिए भी हानिकारक सिद्ध हो सकता है। खुद ही वहां किसी गोली का शिकार हो जाएगा..। उनका विचार था।

बलदेव, धधकती आग में जाने से नहीं डरता था। उसे तो बस एक ही डर था-बड़ी कठिनाई से सामान्य अवस्था को पहुंची आर्थिकता के बिखर जाने का अथवा कुछ चिंता उसे चन्नी की मानसिक अवस्था की थी। खाली हाथ लौटी हुई चन्नी, बलदेव के उधर चले जाने की बात सुनते ही रोने लग जाती। कई बार उसे गश आ चुके थे। कितनी ही बार रातों में बड़बड़ा उठती थी। सभी कुछ सोच विचार कर ही उसने सुरजीत का दरवाजा खटखटाया था।

अकालियों के साथ जेल में रहकर सुरजीत की मान-प्रतिष्ठा बहुत हो गई थी। इमरजैंसी के दिनों में वह और मुज़्यमंत्री इकट्ठे जेल में बंद रहे थे। यूथ-विंग स्थापित करने के लिए उसे, उसे जैसे संघर्षशील कार्यकर्ता की जरुरत थी और उन्हें बाहर आने की। इसी जरुरत ने उनमें समझौता करा दिया था।

राजनीतिक प्रतिभा तो सुरजीत में पहले ही कम नहीं थी। मुज़्यमंत्री की उंगली पकड़कर बड़े-बड़े कदम पाटता, दिनों में ही वह अकाली राजनीति पर छा गया।

कौन सा वजीर अथवा चेयरमैन ऐसा था जिस के साथ उसने कभी न कभी जेल नहीं काटी थी। अच्छे दिन आए तो बहती गंगा में उसने भी हाथ धो लिए। वही मकान जिसे पुलिस ने कभी खंडहरों में बदल दिया था, आज कोठी में परिणत हो गया। जिन खेतों को पुलिस ने कभी आग में झुलस दिया था, वही खेत आज फार्म में बदल गए थे। व्हिस्की, मुर्गों और कारों के झूलों ने सुरजीत की तोंद काफी बाहर निकाल दी थी। पुलिस के घोड़ों की पकड़ में न आ सकने वाला सुरजीत, अब चार कदम चलते ही हांफने लगता था।

छोटे-छोटे नोटों की तही लाकर जब बलदेव ने ड्राइवर को थमायी तो सुरजीत जैसे दहाड़ मारने की स्थिति में आ गया। बच्चों की गोलकें टटोली गई थीं और भगवान का खजाना लूटा गया लगता था।

सुरजीत को लगा, एक बार फिर वह बलदेव से परास्त हो गया है। उसे क्या अधिकार था कि बैरों और ड्राइवरों के साथ बैठकर शराब पीता, धोबियों से कपड़े धुलाता और भांत-भांत के व्यंजनों का आस्वादन करता। क्या वह बस में नहीं जा सकता था? धर्मशाला में रहकर रुखी सुखी नहीं खा सकता था? उसकी बुद्धि कहां चली गई थी, जब बलदेव जैसा नास्तिक व्यक्ति, मंगलवार और बृहस्पतिवार कहकर शराब पीने से टलता था। दो रुपए के केलों से पेट भरकर, बीस रुपये बचाने के लिए व्रत का बहाना गढ़ता था।

'रहने दो बलदेव.. गांव जाकर मैं खुद ही दे दूंगा..।' कहते हुए सुरजीत ने नोटों की तही ड्राइवर से लेकर बलदेव की जेब में उड़सनी चाही।

'नहीं यार, अभी तो तेरा और कर्जा बाकी है.. होटल वाले के भी रहते हैं.. वे फिर दूंगा.. किराया तो देना ही है।'

बलदेव ब-जिद था। उसके लिए हुए भागदौड़ पर पैसा खर्च हुआ है तो देना उसका फर्ज है। यही क्या कम था कि सारे काम धंधे छोड़कर सुरजीत तपती लू में पन्द्रह दिन तक उसके साथ भटकता रहा था। आजकल के हालात में उसके आराम का ज़्याल रखना उसका नैतिक कर्तव्य रहा था।

'अधिक शर्मिन्दा न कर.. दो चार दिनों में तेरे आर्डर न करवा लाऊं तो मेरा नाम भी सुरजीत नहीं। आर्डर भी तुझ्हें घर बैठे को ही मिलेंगे।'

कहते हुए सुरजीत ने नोटों की गड्डी लैनिन के बुत के नीचे टिका दी और खुद आंधी की तरह बैठक से बाहर निकल गया। इससे पहले कि बलदेव पैसे लौटाने जाता, धूल उड़ाती गाड़ी गांव का मोड़ काट चुकी थी।

जितनी देर, सुरजीत पास रहा, बलदेव का मनोबल बना रहा। सुरजीत का विचित्र ढंग से चला जाना उसे कचोके देने लगा।

सुरजीत के जाते ही हारे हुए जुआरी की तरह बलदेव सोफे पर ढेर हो गया। उसका माथा परने लगा, टांगे दर्द करने लगी। पश्चाताप उसका पीछा नहीं छोड़ रहा था। सब छोटा-मोटा बरबाद करने से तो बहतर था कि वह डयूटी पर ही चला जाता, पूंजी तो हाथ से नहीं छिनती। या फिर छुट्टी लेकर घर बैठ जाता। ट्यूशनें तो न छूटतीं। धीरे-धीरे खुद ही बदली रुक जाती। अब तो वह सारे पत्ते हार चुका था। अधिक सोचना फिजूल था।

गोधूलि का समय हो चुका था। घर की नुक्कड़ में बने छोटे से मंदिर में घंटियां बजने लगी। बूढ़ी मां पर उसे गिला नहीं था, किंतु अन्तध्यान होकर आरती गा रही चन्नी पर उसे खेद था। उसकी दस साल की मेहनत मिट्टी में मिल गई थी। बड़ी मुश्किल से उसने चन्नी को अंध-विश्वासों की दुनिया से निकाला था। प्रतिदिन नई-नई मन्नतें मानती, पूजा पाठ करके हर प्रकार से भगवान को मनाने के प्रयास करतीं, व्रत रखतीं। किंतु मन्नत थी कि कभी पूरी नहीं हुई। कभी भी भगवान उन पर मेहरबान नहीं हुआ। कितने ही प्रयत्न और प्रयोग करना पड़े थे, चन्नी को मंदिर जाने से रोकने के लिए। बहुत दिनों पर वह ां से कहने लगी थी कि मंगलवार, वीरवार और शनिवार में कोई अंतर नहीं। मन्नतें न तो भूखे रहकर पूरी होती हैं, न पहाड़ों की ऊंचाइयों पर चढ़कर-प्रत्युत पूरी होती है यत्नपूर्वक।

ऐसे ही स्वतंत्र विचारों वाले लड़के के साथ चन्नी को ब्याह कर उसने सुख की सांस ली थी। क्या पता था कि तीन सालों में ही वह पंजाब में चलती गर्म-हवाओं में झुलस जाएगा और चन्नी तर्क को उसी चिता में भस्म करके मां की झोली में आ पड़ेगी। जीवन की बाजी हारी हुई चन्नी को देखकर मां स्वयं को विजेता सी महसूस करती थी। भगवान से विमुख हुई चन्नी और कैसी आशाएं रखती थी। यह जन्म तो गया, अगले जन्म को संवारने का झांसा देकर चन्नी को पीछे लगाने में सफल हुई फिरती थी।

बलदेव की पसीने से भीगी बनियान बदबू छोड़ने लगी। पंखे के नीचे बैठे हुए भी उसका पसीना सूख नहीं रहा था।

थोड़ी राहत मिले, इसलिए वह टोंटी के नीचे जा बैठा। गैलनों के परिमाण में पानी गिराकर भी शरीर की तपिश कम होने में नहीं आ रही थी।

तपते हुए तन और मन से इसने एक दो ग्रास अंदर निगले और बिना किसी से कोई बातचीत किए कोठे पर चढ़ गया।

बलदेव करवटें बदलता रहा और साथ ही इतिहास के चक्कर को उलटा घूमते देख हैरान होता रहा। किधर लुक-छिप गए वे नौजवान जो इससे नितांत विपरीत सपना लेकर चले थे?

उसका खोजी दिमाग एक-एक साथी का पीछा करने लगा। कोई भ ीकहीं नहीं गया, सब यहीं रचे-बसे बैठे हैं। पैसे के इन्कलाब ने उन्हें सबकुछ भुला दिया है। एक तो अभी-अभी गया है। जिले का जत्थेदार काली पगड़ी सफेद कुर्ता-पाजामा, तिल्लेदार जूती और रंगीन चश्मे। कितना फबता है सबकुछ। कभी सूरज मार्का कहलाने वाला इस से दो छलांगे अधिक लगाकर मंत्री बन गया। झंडी वाली कार हो तो ड्राइवर और मेकैनिक लोगों से क्या लेना देना? जगतार, एफसीआई का एएम है। इन्कलाब की और ब ातें तोभूल-बिसर गईं, पर दलेरी नहीं छूटी। एकाध बोरी नहीं, ट्रकों के ट्रक खपाने के लिए विज़्यात है। कितने ही शैलरों में भागीदार है। वैसे अफसरों पर रौब जमाने के लिए कभी-कभार चार-पांच

सौ की पर्ची कटवा लेता है। उसी के मातहत यदि बिखरी हुई गन्दम चुनकी हुई बिहारनों पर डंडे बरसा दें, अथवा कुकर्म कर बैठे तो उसके सीने में कभी दर्द नहीं उठता। तीन साथियों को मरवा कर सिपाही भर्ती हुआ निन्दर आजकल थानेदार है। फार्म बन गया। कज़्ब्राइनें आ गईं और तीन ट्रक बन गए। जिनका दाव चल गया उन्होंने चला लिया, जो पिछड़ गए, उन्होंने नई पनाहगाहें ढूंढ लीं। मोटर साइकिल ले लिए, पिस्तौल ले लिए, नए निशाने और नए नारे भी। बलदेव जैसा तो कोई इक्का-दुक्का ही रहा था। नई पौध लगाने के उद्देश्य से वह अध्यापक बना। कुछेक पौधे रोपे भी। यदि तूफानों ने उनकी जड़े उखाड़ फेंकी, तो उसका क्या दोष?

सुक्खी को उसने फिजिक्स, कैमिस्ट्री की बजाय तर्क की साइंस अधिक पढ़ाई थी। कालेज के दिनों में वह बलदेव से रहनुमाई लेता रहा। जब उसके गोल्ड-मैडलों की कोई कद्र न हुई तो बेकार घूमता-घूमता वह सरकार के साथ-साथ बलदेव से भी बागी हो गया। अब बैंक लूटना, खोहें करना, छीना-झपटी और पुलिस को चकमा दे जाना उसके बाएं हाथ का खेल है।

शिन्दी, उससे दो कदम आगे थे। पिता की मृत्यु हो जाने पर पढ़ाई छोड़ी पड़ी तो भी खैर। उसे आशा थी वह गांव के किसानों को लामबंद कर लेगा। कई संघर्ष उसने किए भी। गर्म लहू था। लगातार दो वर्ष ओलों और बाढ़ में फस्ल गंवाकर लहू उबाल खा गया। युग-परिवर्तन के लिए उतावला होर वह भी सुक्खी के साथ जा मिला। अब पांच-चार लोगों की हत्या करना उसका शौक है।

सुक्खी और शिंदी के लिए क्तो कोई बाहें पसार खड़ा था, उन्हें उचक लिया। दसवीं तक पढ़ा हुआ मुसलमानों का लड़का फरीदा किधर जाता। चार अक्षर पढ़कर खड्डी पर बैठने में उसे शर्म महसूस होती और कुर्सी पर कोई उसे हाथ तक रखने नहीं देता। दो-चार साल तो सफेद कपड़े पहनकर चौपाल में बैठा किया। पश्चात कारों के झुलों के स्वाद में पड़कर हंसे जैसों की अफीम ढोने लगा। दिल्ली के चक्कर काटते-काटते बाबरी मस्जिद वालों का लीडर बन गया।

चिढ़िया तक से डरने वाला भूषी बनिया तो त्रिशूल उठाए फिरता है। फैक्टरियों के मुकाबिले जब उसकी वर्कशाप फेल हो गई तो उसने शिवसेना के लिए पिस्तौल बनाने शुरु कर दिए। दुकान भी बढ़िया चल निकली, पैसा भी हो गया और नाम भी।

बलदेव किस-किस को लौटा लाए। बाहर तो क्या उसके अपने ही घर में बगावत के झंडे बुलंद हैं। शिन्दे के पुलिस मुकाबले में मरने की खबर आए अथवा जस्से की, उसके सीने में उथल-पुथल मच जाती, किंतु चन्नी की आंखें चमक उठतीं। उसे लगता मानों उसके पति का बदला ले लिया गया है। उसकी भोली बहन की बुद्धि को भी दीमक चाट गई। वह भूल जाती है, कि शिंदे का बदला लेने के लिए हजारों जस्से पैदा होंगे और लाखों सतिन्दरों को जाने देनी पड़ेंगी। सतिन्दर की सुरक्षा के बहाने लाखों जस्से सरकारी गोली का शिकार होंगे। इस प्रकार तो गिनती बढ़ती ही जाएगी, बढ़ती ही जाएगी- जब तक सुक्खों को नौकरियां नहीं मिलतीं, शिन्दों को फस्लों का मूल्य नहीं मिलता और भूषियों को उचित पारिश्रमिक।

रात पूरे जोबन पर थी, किंतु गर्म हवाओं की तपिश कम नहीं हुई थी। गर्म हवा के झोंके कई बार उसके नंगे बदन को झुलस चुके थे। घूंट-घूंट भरकर सामने रखा सारा जग उसने भीतर उडेल लिया था, किंतु सूखे गले को तनिक भी राहत नहीं मिली थी। नीचे जाकर जग भर लाने की उसमें हिज़्मत नहीं थी। बड़ी मुश्किल से तो परिवार वाले सोए थे। थोड़ी सी भी आहट पर जागकर वे उसके गिर्द हो जाते। वैसे, बार-बार खांसती मां और सरोज की खाट की चीखती कड़ियों से उसे लेशमात्र भी आशंका नहीं थी कि वे भी उसी की भांति समय को धक्का दे रही थी।

गर्मी और प्यास ने उसे बेचैन कर रखा था। कभी-कभार यदि आंख लग भी जाती तो विचित्र से स्वप्न उसका पीछा करते। कभी सतिन्दर के विलाप.. कभी झूठे पुलिस मुकाबले में मर रहा बेटों जैसा सुक्खी, कभी भूमिगत होने के दिनों में उन्हें समझा रहा सुरजीत.. कभी होटल में बिल से डरता हुआ बलदेव.. कभी मुज़्यमंत्री की कोठी.. कभी टाइप

हो रहे आर्डर। कभी डीईओ से झड़प। कभी लोगों की हाहाकार। कभी नवतेज सिंह का पुत्र और गुरबज़्श सिंह का पौत्र.. बाल कटाने की पादाश में वीरगति प्राप्त हुआ सुमीत..। कभी जूझ रहे रतन पटवारी, बलदेव मान और दीपक धवन की रुहें..।

इसी घबराहट में बलदेव उठकर बैठ गया। तारों भरे आकाश में भटक-भटक कर चलते चांद की ओर देखने लगा।

रात, वृद्धावस्था में प्रवेश कर चुकी थी। इसीलिए कभी-कभी ठंडी हवा का झोंका नसीब होने लगा।

चमकते सितारों के सन्मुख बलदेव शर्मसार हो गया। उनसे आंख मिलाते ही उसके सीने में उठती भावनाओं में ज्वार-भाटे बिफर उठे।

दोनों बाजू फैलाकर, उसने आकाश को बाहों में भरना चाहा। उसका मन हुआ कि आकाश के एक-एक तारे की बांह पकड़ ले और पूछे।

...क्या इनके कल्पना देश में तुम दिन में दिखाई देने लगोगे, तुज्हारा सहचर, चन्द्रमा आग बरसाने लगेगा, सूरज की तासीर बदल जाएगी, जून के महीने में बर्फ पड़ने लगेगी, नदियां समुद्र में से निकलेंगी अथवा वृक्ष हवा में लटकने लगेंगे? क्या वहां आदमी के चार हाथ होंगे या फिर खाए बिना ही भूख मिट जाएगी? क्या सभी मजदूर मालिक बन जाएंगे अथवा मालिक मजदूरी करने लगेंगे? शायद कुछ भी नहीं बदलेगा। बस, टाटाओं, बिरलाओं के मात्र नाम ही बदलेंगे। सुक्खों, शिन्दों और फरीदों की कतारें और लज़्बी हो जाएंगी।

बलदेव.. वह भी पहले वाला बलदेव नहीं रहा। उस समय, पिता के सिर पर, घर का खर्च तो चलता ही था। अब तो वह भी नहीं रहा। बूढ़ी मां है.. समाचार सुनकर ही कांपने लगती है। विधवा चन्नी है। उसकी छह महीने की बच्ची है। कौन है जो बाद में उनको धैर्य भी बंधा सके? सरोज, उसके दो मासूम बच्चे.. इतना बड़ा महाभारत, वह अकेला कैसे लड़ सकता है।

'तुज्हारी सोच को भी ग्रहण लग गया है।' तारों में चमकते शहीदों के चेहरे उस पर मुस्कराए।

'छोटे से परिवार की बात सोचने लगे हो.. बड़े परिवार का क्या बनेगा।'

तारों में घिरे हुए बलदेव चारों ओर नजर दौड़ाई, पूर्व की कोख सुर्ख होती जा रही थी। अब सूरज के उगने की बारी थी।

बहुत ही धीमे से बलदेव सीढ़ियों से उतरा। ट्रंक, पेटियां ढूंढकर पुराना थैला निकाला। दो-एक पुस्तकें, कुर्ता, पाजामा और अन्य छोटी-मोटी चीजें भरकर थैला कंधे से लटका लिया।

चल-छिन में ही उसे तैयार हुआ देख, हैरान-परेशान, सारा परिवार नीचे उतर आया।

'सुरजीत को ओर चले हो बेटे?' पुराना थैला देखकर बुढ़िया का माथा ठनक गया था। दिल धड़कने लगा था और टांगें कांप गई थीं। फिर भी साहस बटोर कर उसने पूछ ही लिया।

'नहीं। मैं तो डयूटी पर जा रहा हूं।'

चन्नी की आंखों में उमड़ आए आंसुओं को पोंछते हुए बलदेव ने मां को समझाया।

'पीछे, हमारा क्या बनेगा भाई?'

'मैं तुम लोगों के भले के लिए ही जा रहा हूं।'

सरोज की पीठ थपथपा कर बलदेव ने पीठ फेरी। सूरज की पहली किरणों ने उसके मस्तक को चूमा।

बस-स्टैंड की ओर तेज-तेज कदम बढ़ाते बलदेव को देखकर मां का दिल डूबने लगा। उसे लग रहा था मानों उसका इकलौता बेटा रण-भूमि में जा रहा हो।

हिंदी अनुवाद : शाकिर पुरुणार्थी

भोड़ी बाजार, जगराओं, जिला लुधियाना

उतराधिकार

पंजाबी कहानी : मित्तर सैन मीत
हिंदी अनुवाद : शाकिर पुरुणार्थी

दिन उगने से पहले ही रामदयाल को उदास के बादलों ने आ घेरा।

उस जैसे प्रतिष्ठित जज की पत्नी, सवेरे ही बन-संवरकर गेट पर खड़ी हो सस्ते-से उपहारों के लिए गटिया किस्म के लोगों की प्रतीक्षा करे-यह उसे पसंद नहीं था। किंतु दिन निकलते ही तेजो ने यह नाटक करना ही था। इस बारे सोचता हुआ, वह रात भर सो नहीं सका।

जो लोग, लक्ष्मी के किसी भी रुप से उसे सज़्मोहित नहीं कर सके, उन्होंने चार-पांच सौ के इवज उसकी पत्नी को मोह लेना था और अगले दिन सीना तानकर कचहरी में खड़े होना था। सहयोगी जजों को उसकी ईमानदारी पर कटाक्ष करने के लिए इतनी सी बात ही काफी थी।

काश उसकी पत्नी, उसके पेशे की पेचीदगियों को समझ सकती। उसे गिला है कि वे दीवाली के दिन ही गांव क्यों जाते हैं? पीछे वे लुट-पुट जाती है। दीवाली की शुभकामनाएं देने वाले लोग ताले को ही सैल्यूट मारकर पलट जाते हैं। पड़ोसी जजों के उपहारों से भरे कमरे देखकर उसे सातो कपड़ो आग सी लग जाती है। पड़ोसियों से वे किस बात से कम है। रामदयाल उनसे कई स्टैप सीनियर है। शहर का सारा लिाका उसके अधीन है। बड़े-बड़े सेठ उससे बात करने को तरसते हैं। फिर यदि पड़ोसियों के नौकरों के पास महीना भर मिठाइयां खत्म नहीं होती, यदि उनके घरों से भिखारी भी पेट भर-भर निकलते हैं और यदि घटिया शराब पीने वाले गरेवाल के घर में महीनों 'मेकडावल' और 'पीटर-स्कॉट' के दौर चलते हैं तो उनके अपने यहां तो चीजें रखने के लिए रिक्त स्थान भी नहीं मिलना चाहिए।

तेजो को बहुत समझाया कि उसका शहर के सेठों के पास अधिक आना-जाना नहीं है। न तो वह शर्मा है, न गरेवाल। उसकी रगों में किसी ऊंचे खानदान का खून नहीं। अपने नाम को तोड़-मरोड़ कर बेशक उसने आस्दयाल बना लिया है, फिर भी लोगों की नजरों में वह रामू सांसी ही है। रामू, जो शर्मो और गरेवालों की ही नहीं, बल्कि उनके कारिन्दों तक की जूठन भी खाता रहा है। शर्मा की मां यदि आज दिन भी लोगों के घरों में रोटियां (हन्दे) लेकर आती है तो क्या हुआ? गरेवाल के बाप से यदि अभी तक गिरवी पड़ी जमीन छुड़ाई नहीं जा सकी तो क्या फर्क पड़ता है। उनकी रगों में खानदानी लहू तो दौड़ता है। उन्हें प्रतिष्ठित लोगों में उठने बैठने और मेलजोल बढ़ाने की सूझ तो है। वे अपनी जात का पक्ष पूरते हैं। प्रतिफल-स्वरुप, उनकी जात वाले नजरानों से उनका स्वागत करते हैं। वह ठहरा सासियों की औलाद। नंगो-मलंगों के बारे में सोचने वाला। सेठों से वह क्या आशा रखता है?

कोई कुछ भी कहे, राम दयाल को कभी में से जात की बू नहीं आती। लोगों के बर्तन मांझ-मांझकर हाथ की रेखाएं मिटा चुकी हर औरत उसकी मां है और पेबंद लगे हुए हर कुर्ते वाला उसका बाप। यदि वह शर्मा अथवा गरेवाल की तरह सोचता तो कभी भी बिरजू पंडित को बरी न कर सकता। उसे मालूम है बिरजू की जिंदगी के सुखद सुन्दर वर्ष कारखानों की भट्टियों में राख हो गए हैं। बुढ़ापे में भूखा मरता वह यदि अवैध शराब निकालकर पेट भरने लगा है तो उसका क्या दोश? यदि वह गरेवाल की तरह सोचता तो उसकी कलम कब की राजपूत मुजारों को बे-दखल कर चुकी होती। पर उसे तो चौधरियों जैसे चमारों में बिसवेदारों की झलक पड़ती थी। तो भी लोक यदि उसे चूहड़े-चमारों का प्रतिनिधि कहते हैं तो उनकी मर्जी। उसे किसी की परवाह नहीं, किंतु उसकी पत्नी भी यदि ऐसा ही सोचे, तब वह क्या करे?

रात भर वह उस घड़ी को कोसता रहा, जब उसने तेजो के आगे झुककर इस बार गांव न जाने का निर्णय लिया था। वह हैरान था कि सब कुछ जानते हुए भी वह कौरवों की चाल में कैसे आ गया? तेजो को उसकी पद्रह साल की कमाई को दांव पर लगाते हुए कोई झिझक नहीं हो रही।

सुबह, नहा धोकर तैयार होती और मस्ती में गुनगुनाती हुई, तेजो उसे जहर जैसी लग रही थी। इस क्षण उस पर लक्ष्मी का भूत सवार था। कोई भी तर्क-पूर्ण बात सुनने को उसके कान बंद थे।

बिस्तर पर ही बेचैन लेटे राम दयाल को, बार बार घाची, बेअन्त, राज और प्यारे की याद आ रही थी। कितना उजाला बांटा था उसने, उन सांसियों की झोपड़ियों में। रामदयाल को वे कहां से कहां ले आए हैं। पन्द्रह-पन्द्रह साल बीत चुके हैं, नक्सली दोस्तों को शहीद हुए किंतु रामदयाल के जेहन में वे अब भी जिन्दा हैं। उनकी सोच ने कभी उसे विचलित नहीं होने दिया। काश तेजो को वे एक बार भी मिले होते। तब शायद तेजो इस प्रकार नहीं सोच सकती।

गिन्दे, मिन्दे और शिन्दे की याद भी उसे कचोके देने लगी। दौड़ में पिछड़े हुए उसके बचपन के साथी। गिन्दा पहली श्रेणी में हट गया, मिन्दा दूसरी में और शिन्दा चौथी में। अब गिन्दा रेढ़ा चलाता है, मिन्दा दिहाड़ीदार है और शिन्दा जेल में। दौड़ में वह अकेला ही दौड़ा था। सेवादार से क्लर्क बना और क्लर्क से जज।

नौकर होकर घर से निकले उसे बीस साल हो गए थे। इन बीस सालों में कुल्लियों में रुल रहे अपने साथियों को वह एक दिन भी नहीं भुला सका। उसका बड़ा अज़्सर बनना भी उसके साथियों को कभी नहीं अखरा। गांव की उसकी यात्रा, उनके लिए राम की अयोध्या-वापसी जैसी होती। दस-दस दिन पहले से तैयारियां शुरु हो जाती। भरत मिलाप के लिए उतावली उसकी बाहें और नत्थू के चौबारे के सुख के लिए लड़पता उसका मन भी विरह के एक-एक पल को, हजार हजार साल की तरह बिताता।

गाड़ी से उतरते ही वह अपनी अज़्सरी को तिलाजंलि दे देता। बच्चों को गिन्दे के खच्चर के रेहड़े पर बिठाकर 'वेहड़े' (जाति-विशेष की छोटी बस्ती) की ओर भेज देता और खुद शिन्दे और मिन्दे की बाहों में बाहें डालकर वे बाजार की तरफ चल देते। पहले वे नत्तू हलवाई से खील-बताशे खरीदते, फिर लीले से गर्मा-गर्म जलेबियां और आइखर में रामू से लड्डू। हंसते-खेलते बीरबल के पकौड़े खाते वे दिन ढले वेहड़े में पर्दापण करते।

मिट्टी की हाटड़ी के समझ, लक्ष्मी की पूजा होती। लक्ष्मी, जिसने सदियों से इस वेहड़े का रुख नहीं किया था।

फिर मिन्दे की पहले तोड़ की दारू के पैग चलते। गिन्दे के देसी मुर्गे के शोरबे से भीगी उंगलियों को चाटते, बचने के ढोल पर भंगड़े डालते और हेकें लगाते, वे दिवाने हो जाते।

आधी रात के बाद, पीपल के नीचे उसकी कचहरी लगत। घरवाली को पीटने पर वह छज्जू को जुर्माना करता। लड़की को स्कूल से हटा लेने पर मिट्ठू को झाड़-फटकार करता, खैरैती को मारपीट करने के अपराध में साधु से माफी मंगवाता, सूअरों की नई किस्मों के बारे में बातें होती। बैंक की ओर से मिलने वाले कर्जों की नई स्कीमों की जानकारी देता और नत्थ को कालेज से मिलने वाले वजीफे के फार्म भरते-भरते वह दिन चढ़ा देता।

सारे वेहड़े में नई आशाओं के दीप जलाकर वह गाड़ी में बैठ पलट आता। कई दिनों तक उसे अजीब सा नशा चढ़ा रहता।

किंतु इस बार यह नशा तेजो ने छीन लिया था। वह जानता था, उसका सन्देसा मिलते ही वेहड़े में मातम छा गया होगा। बापू ने लेमू घिस-घिस कर हुक्का नहीं चमकाया होगा। न तो मिन्दे ने शराब निकाली होगी, न ही शिन्दे ने मुर्गा बनाया होगा। न उसे माश की छोंकी हुई दाल नसीब होगी, न ही फुल-प्लेट जितनी बड़ी बेसनी रोटियां। प्याज की चटनी, मूंग की दाल, सरसों का साग, मक्की की रोटी और लस्सी के गिलास-इन सबके लिए अभी एक साल और तरसना पड़ेगा। कई बार जीभ का स्वाद पूरा करने के लिए ड्राइवरों के ढाबे की तरफ भागना पड़ेगा। इडली, डोसे और हॉट-डौगों से तो वह ऊब चुका था।

सबसे अधिक चिंता तो उसे सिर पर खड़े इलेक्शन की थी। सभी पार्टियों की आंखें इसी वेहड़े पर आकर टिकती हैं। जैसे-तैसे वह वेहड़े की फूट से ब चाता रहा है। इस बार कोई अपनी चाल न चल जाए। छोटे-छोटे झगड़े, जिन्हें वह खुशी-खुशी निपटा आता था, कहीं लड़ाई के बीज न बन जाएं। नत्थू का वजीफा न रह जाए। किसी की किस्त ही न टूट जाए।

खिड़की में से सूरज की पहली किरने उसके मस्तक पर आ जमीं। आखें मलता वह उठकर बैठ गया।

उनकी कालोनी में चहल पहले शुरु हो गई। कोठी के शराबी लान में मेज के गिर्द सजी कुर्सियां मेहमानों की प्रतीक्षा कर रही थीं।

तेजो, सबसे कीमती सूट पहने गेट के पास चहलकदमी कर रही थी। कभी-कभी, चोर आंख से वह शर्मा की कोठी के सामने इज़्पोर्टिड कार की ओर देखती। कार की पिछली सीट पर रखे डिब्बों में से किसी एक पर अपनी मोहर लगी होने की कल्पना करती होगी वह-उसने सोचा।

उसने कार की ओर नजर दौड़ाई। कार का वी-आई-पी नज़्बर उसका जाना पहचाना था। यह था शहर के मशहूर होटल 'चांद' के मालिक नगिन्दर का। नगिन्दर, जिसकी महाराजों जैसी शान मिट्टी में मिल चुकी थी और कई साल वह उसकी कचहरी के सामने धक्के खाता रहा था।

'सुन्दरता का यह सौदागर तेरे बलिष्ठ शरीर की कद्र पाने को शायद राह भूल बैठे। अन्यथा राम दयाल की तरफ देख भी सके, इतनी उसकी हिज़्मत नहीं।' घास खोद-खोदकर चन्दन की गोली जैसे सुन्दर शरीर की मालिक तेजो पर मोहित हुए रामदयाल का व्यंग्य करने को मन हुआ किंतु दांत पीसने के बिना वह कुछ नहीं कर सका।

होटल की मशहूरी का राज किस से छिपा था? चांद की चांदनी में वहां हुस्न का बाजार लगता था। हुस्न का मोल करने वाले कोई ऐरे-गैरे, नत्थू-खेरे नहीं थे। होटल की मोरनियों की झलक उन्हीं को नसीब होती थी, जो नोटों की बारिश कर सकते। यह सुविधा शहर के गिने-चुके उद्योगपतियों और कुछेक राजनीतिकों को ही प्राप्त थी।

नए पुलिस कप्तान एक बार उसके नखरे पर नाराज हो कर चांद को धरती पर घसीट लिया। उस दल्ले की क्या मजाल वह उसकी पसंद की लड़की उसकी कोठी पर न भेजे। विक्षुब्ध कप्तान ने अंध-नंगी लड़कियों का शहर में जुलूस निकाला। अगर कहीं नगिन्दर वजीर की कोठी में नहीं जा छिपता, तो उसका भी जुलूस साथ ही निकल जाना था।

जैसे-तैसे नगिन्दर कप्तान के गुस्से से तो बच गया, किंतु रामदयाल की कलम को तलवार की तरह चलाने से न रोक सका। कुआंरी लड़कियों के शौकीन शर्मा ने कई बार उसके दरले किए। किसी न किसी बहाने सुन्दर लड़कियों के दर्शन कराए। उसे, अपने वेहड़े की जीतो और सीतो के बदले हुए रुपों में, कभी भी सौन्दर्द का आभास नहीं हुआ। कोई जीतो थी- जो तीन बच्चों का पेट पालने के लिए एफसीआई को गोदामों से गेहूं के बदले इज्जत लुटाती थी। कोई सीतो थी जो टी.बी के मारे केहरू को मौत के मुंह से बचाने के यत्न करती आढ़ती की हवस का शिकार होती। मजबूरी में जिस्म बेचने वाली लड़कियां गुनाहगार। उनकी मजबूरियों से खिलवाड़ करके उनसे सैंकड़े गुना ज्यादा कमाने वाला बे-कसूर। ऐसा उसकी जमीर ने कदापि स्वीकार नहीं किया। सैकड़ो सिफारिशों को लताड़ते हुए उसने नगिन्दर को मुजरिमों के कटहरे में खड़ा रकके ही दम लिया था।

फिर कौन सी खुशी में वह तेजो की कोठी का रुख करेगा?

उनकी कोठी के बैल खटखटाए बगैर ही वापस लौटती कार ने उसके कानों में शहद सा घोला। विजयी योद्धा की तरह गर्दन अकड़ाकर उसने अंगड़ाई ली। चारपाई को छोड़ा और खोया हुआ साहस बटोरकर तैयार होने लगा। बन-संवर कर वह हलकी गर्म धूप का नजारा लेने को छत पर जा बैठा।

तेजो अभ भी गेट पर खड़ी थी। गैस के चूल्हे पर उबलता पानी सीने के स्पर्श को तरसता, आधा रह गया था-किंतु अभी तक एक भी मेहमान ने तेजो को सलाम नहीं बुलाई थी। फलों की बड़ी टोकरियों के भार से दबे दो काले-

कलौटे सेठों को अपनी कोठी की तरफ बढ़ते देखकर राम दयाल का माथा ठनका। मोटे-मोटे पेट और राम दयाल की कोठी की तरफ। हैरान सा हुआ वह मुंडेर के पास आ खड़ा हुआ और सूअरों जैसी गर्दनों को पहचानने की कोशिश करने लगा।

यदि वह भूल नहीं रहा तो ये शहर के मशहूर ठेकेदार, लेख और मोती थे। इनका बाप हलवाई की दुकान पर बर्तन मांझते-मांझते दम तोड़ गया था। किसी ने इन्हें नकली शराब बनाने का ऐसा गुर समझाया कि खाली बोतलें खरीदते-खरीदते ये शराब के ठेके खरीदने लगे। हराम का पैसा पानी की तरह बहाकर इन्होंने खूब नाम कमाया। धार्मिक स्थानों से लेकर सरकार दरबार में भी सब जगह उनका मान-सम्मान होने लगा। किंतु जब धागा मिल के दो मजदूरों की जानें इनकी नकली शराब की भेंट चढ़ी तो ट्रेड-यूनियन वालों ने उनकी भूतनी भुला दी थी। रोज की नारेबाजी से तंग आकर मुज्त की शराब पीने वाली पुलिस को भी घुटने टेकना पड़े। बेशक ट्रेड यूनियन वालों ने तो ठेकेदारों को हथ-कड़ियां लगवा दी थीं, किंतु उसका मन द्रवित होता रहा। भोले-भाले मजदूरों को कैसे समझाए कि पूरा जोर लगाकर भी वह ठेकेदारों को दो साल से अधिक सजा नहीं कर सकता। पुलिस ने मामूली सा केस बनाकर उसके हाथ बांध दिए थे।

जितनी देर केस चलता रहा उसका महबूब दोस्त घाची उसकी पैरवी करता रहा। अदालत में वह राम दयाल की शेर सी दाहड़ से ठेकेदारों के खरीदे हुए गवाह गीदड़ों की तरह मैदान छोड़ गए। कत्ल का केस बनाकर, तब मिसल को सैशन सुपुर्द करने में उसे कोई दिक्कत नहीं हुई थी।

घबराए हुए अब वे गरेवाल की झोली में जा गिरे थे। गरेवाल का सैशन के यहां आना-जाना था। इस जैसे कमजोर केस में पहली पेश पर ही बरी करा लेना, उसके बाएं हाथ का खेल था। बदले में सेठ, ठेकेदारों वाला दिन दिखा रहे थे। गरेवाल बेशक ड्रमों के ड्रम व्हिस्की पिए, उन्हें कोई परवाह नहीं थी।

रामदयाल को छत पर खड़ा देखकर उन्होंने आंखें जमीन में गाड़ लीं। तेज-तेज कदम बढ़ाते वे, गरेवाल की कोठी के आगे रुक गए। गरेवाल की पत्नी ने खिले-माथे उनका स्वागत किया। गेट से ड्राइंड-रुम तक उनकी अगवाई करते हुए, कई बार उसने कड़वी आंखों से तेजो की ओर देखा।

राम दयाल ने नीचे खड़ी तेजो की उदास आंखों में ताका। उसे गंभीर कर, एक बार फिर उदासी के बादलों ने उसे आ घेरा।

उसे लगा मानो अपनी जमीर, अपने पेशे से इंसाफ करके वह अपने परिवार के साथ बेइंसाफी कर रहा है। उससे सात साल जूनियर जज कितना आगे निकल गए। भूखे मरते शर्मा ने राजधानी में कोठी बना ली। गरेवाल ने पांच लाख खर्च कर लड़की का ब्याह कैनेडा में किया है। रामदयाल ऐसा नहीं कर सका। चोरों की औलाद कहलाने वाला रामू, चंद रुपयों के बदले बड़े चोरों को साधु कैसे बना दे? सच की लड़ाई लड़ता यदि वह अपने बच्चों के लिए कुछ नहीं कर सका तो उसका क्या दोष।

तेजो से अधिक सहन नहीं हुआ। गेट का पिंड छोड़कर वह भीतर ड्राइंग-रुम में चली गई।

पराजय का अनुभव करता रामदयाल छत पर टहलने लगा। तेजो की परेशान आंखों ने उसके सम्मुख प्रश्नों के ढेर लगा दिए थे। ईमानदारी के बदले, आखिर उसे क्या मिला? गरीबी, बदनामी और सबसे बढ़कर अज़सरों की नाराजगी। बजारा गए तो उसे किसी दुकानदार ने कभी नमस्ते नहीं बुलाई। चौक में खड़े सिपाही कभी उसे सैल्यूट नहीं दिया। घर में पत्नी और बच्चे उदास। शायद मां-बाप भी किसी कोने में नाराजगी पाले बैठे हों। उन्हें उसकी जजी का क्या लाभ? न तो उनका झोपड़ियों से छुटकारा हुआ, न दिहाड़ीदारी से। मां का भी दिल चाहता होगा, बेटे की कोठी के पंखे नीचे लेटकर खुर्राटे भरे। बापू चाहता होगा, वह चमकता हुआ हुक्का लेकर घास के मैदान में कुर्सी बिछाकर बैठे। चाहता वह भी है। लेकिन क्या करे। तनज़्वाह के दो हजार तो पहली तारीख को ही चुक जाते हैं। ऊपर से वह कमा नहीं सकता। उसके

भीतर का रामू मर ही नहीं रहा। शायद वह मारना भी नहीं चाहता। वह पैसे ले भी तो कहां से। किसी का हक मारकर वह पैसे नहीं ले सकता। जिसका वैसे ही हक बनता है, उससे पैसे किस बात के ले।

वैसे उसे ज्ञात था कि यह सिर्फ उसकी जिद ही थी। उसका कोई भी फैसला ऊपर की अदालतों में टिक नहीं पा रहा था। नरिन्दर बरी हो गया। गरीब लड़कियां जेल काट रही हैं। शराब के ठेकेदारों ने दो हजार देकर मरने वालों के वारिसों को खरीद लिया। किसी भी दिन बरी होने के हुक्म उसकी टेबल पर आ टिकेंगे। कभी-कभी उसका कोई फैसला रद्द होता, कई दिन वह बेचैन रहता। लगता जैसे वह पैसों की चकाचौंध से रचे हुए चक्रव्यूह में फंस गया है। जब भी कभी उसने इसे तोड़ना चाहा, उसके ऊपर बैठे नीतिज्ञों ने उसे धुत्कार दिया। अनाड़ी अभिमन्यु महार्थियों के रचे हुए चक्रव्यूह में बलिदान ते दो सकता है किंतु उसका भेदन नहीं कर सकता।

सूरज अपनी अन्तिम किरणें समेटने लगा था, सड़क की चहल-पहल अपने-अपने घरों में जा टिकी थी।

गमों की गठड़ी को संभालता रामदयाल भी नीचे उतर आया।

तेजो का मुंह सूजा हुआ था। दिनभर गेट पर टांगे तुड़वा कर भी वह खाली की खाली ही रही थी। पांच-छह मिठाई के डिब्बे आए थे। वे भी आस-पोड़ से। इतने तो उन्हें भी बांटने पड़े थे।

लाल सुर्ख आंखे निकाले कभी वे दाएं से गुजरती कभी बाएं से। बेशक वह कुछ भी बोल नहीं रही, किंतु उसके मन की बातें उससे छिपी नहीं थी। वह उसी को कोस रही थी और उसकी ईमानदारी को गालियां दे रही थी। वह खरी-खरी सुनाना चाहता था, किंतु उदास हो चुके माहौल को और बिगाड़ना नहीं चाहता था। चुप-चुप सा वह सुखद परिसिथियों की प्रतीक्षा कर रहा था।

'इस बार दीवाली रुखी-फीकी सी लगती है,' उसके पास बैठते हुए तेजो ने बात चलाई। या तो उसने कल्पनी के समुद्र में गोते लगाते रामदयाल के चेहरे पर उड़ती हवाइयों को पढ़ लिया था, अथवा कोठी की भयानक खामोशी से घबरा गई थी या फिर उसे अपनी गलती का एहसास हो गया था।

हां, इस बार न बापू का आर्शीवाद है, न बेबे की आशीशें। न खीलें न बताशे.. न रुढी मार्का शराब और न ही तेज मिर्चों वाली मुर्गे की तरी।

'खील-बताशों का क्या है? अर्दली से मंगवा लेते हैं। मुर्गा मैं बनाए देती हूं।' रामदयाल की आंखों में छलके पानी को देख, तेजो की आंखें भी नम हो गई।

'हूं.. बाजार से खील-बताशे मंगवाकर मेरा जुलूस निकाल दे। वे लोग तो पहले ही तुले बैठे हैं। मैं जज हूं जज। जज कभी खील-बताशे नहीं खाते। देसी शराब नहीं पीते। वे मेकडावल पीते हैं। कलाकद और रोस्टेड चिकन खाते हैं। मैं भी ऐसे ही करुंगा।'

राम दयाल की बुझारतें तेजों को समझ में नहीं आई। यह पहली बार था कि शराबी से हुए रामदयाल से उसे डर आया था।

दिये जलाने का समय हो चुका था। भयभीत सी वह दिए-बती की व्यवस्था करने लगी।

आधुनिक स्टाइल की कोठी के मार्डन ड्राइंगरुम में बैठे रामदयाल को लग रहा था मानों वह शीशे के घर में कैद है। वह तो जंगल का फूल था। उसे वहां से उखाड़कर गमले में सजाकर महानगर का श्रृंगार बना दिया गया। यहां उसका दम घुट रहा है। उधर, उसके अभाव में जंगल सूख रहा है।

पत्नी ने कई सन्देसे भेजे। वह दिए जलाए और लक्ष्मी की पूजा करे। किंतु उसे तो आज अंधेरे से ही मोह हो गया है। बुत सा बनकर वह बिटर-बिटर तकता रहा।

'क्या हो गया है आपको? इतना ही जी को लगाव था तो पहले ही बता देते। हम गांव ही चले जाते।'

आक्लान्त सी तेजो ने उसके कंधे को झंझोड़ा।

'ला, दे मुझे थैला। मैं लाता हूं खील-बताशे। हम यहां भी गांव-जैसी दीवाली ही मनाएंगे। कोई हंसता है तो हंसा करे। कोई झल्ला कहता है तो कहता फिरे। मुझे किसी की परवाह नहीं..।'

थैला उठाए बाजार जाते रामदयाल को रोकने की उसे हिज़्मत न हुई।

राम दयाल ने दूर-दूर तक नजर दौड़ाई। उजाड़-बयाबान में बनी जजों की कोठियों में अंधेरा पसरा हुआ था। कहीं-कहीं टिमटिमाटे एकाध दिये की अंधेरे के आगे कोई पेश नहीं चल रही।

दूर छाज घाड़ो की बस्ती में उजाले बांटते सैकड़ों दिये उसे आवाजें देने लगे। उधर से आती ढोल की आवाज ने उसके पैरों से कपकपी सी छेड़ दी। उसका दिल भी भांगड़ा डालने और हेकें लगाने को मचलने लगा। घुंघरुओं झंकार, उसके मन का काफी बोझ हलका कर चुकी थी। यह लोगों पर गुस्सा भी कुछ कम नहीं आ रहा था। एक-एक को संदेशा भेजा था। कोई एक भी आ जाता तो दीवाली रंगीन हो जाती। उसके भीतर का रामू दोस्तों की पक्ष-पूर्ति कर रहा था। संभव है, गिन्दे के पास बढ़िया कपड़े न हो.. और मिन्दे के पास किराया आते भी कैसे आते बेचारे।

ढोल की ताल से ताल मिलाते हाथ में थामे थैले को रान पर नचाते रामदयाल को पता भी नहीं चला, कब वह बाजार गया, कब खील-बताशों और लड्डुओं से थैला भरा और कब वापस लौटा।

सफेदों से सूखी पत्तों पर होती पदचाप ने उसे सावधान किया। आंखों पर पूरा जोर देकर उसने अंधेरे में उभरते प्रतिबिज़्ब को पहचानने की कोशिश की। सफेद कुर्ता, सफेद चादरा, कुल्लेदार पगड़ी और लिश्कती हुई जूती। प्रतिबिज़्ब में, गिन्दा, मिन्दा अथवा बापू कोई भी प्रकट हो सकता था। किंतु नहीं हुआ। यह कोई बूढ़ा था जो उसका रास्ता रोके खड़ा था। देखते-देखते उसका शरीर रामदयाल के पैरों पर ढेर हो गया।

सरकंडों की सी बांहों से पकड़कर खड़ा करते, रामदयाल ने बूढ़े के चेहरे को भांपा। सुबकियां भरते बूढ़े की आंखें पोंछते रामदयाल की हूक निकल गई। उसने बूढ़े को सीने लगा लिया। इस बूढ़े को कुछ दिन पहले ही उसने पचास हजार मुआवजा दिलाया था। सूरज ट्रांसपोर्ट के शराबी लड़के से, इसका बेटा और बहू बस के नीचे कुचले गए थे। उनके पांच बच्चे, माता-पिता के साथ-साथ रोटी से भी मोहताज हो गए। उसे ज्ञात था, ट्रांसपोर्ट को चाहे वह पूरी सजा कर दे, तो भी बच्चों का पेट नहीं भरना था। समझा बुझाकर उसने ट्रांसपोर्ट से मुआवजा दिला दिया था।

आपने मेरे बच्चों को रोटी बज़्शी है हुजुर.. मैं डरते-डरते मुंह-अंधेरे आया हूं.. कहीं कोई देख न ले.. दीवाली मुबारक हो हुजूर..।

कहते हुए साधु ने कांपते हाथों से एक परना (कंधे पर रखने वाला कपड़ा) उसकी ओर बढ़ाया। दोनों सिरों पर दी हुई छोटी-छोटी गांठों में कुछ बंधा हुआ था।

'क्या है इसमें?' गांठे देखकर उसकी आंखें सुर्ख गई और भवें तन गईं।

'हम आशीशों से अधिक क्या देने योगय हैं हुजूर.. ये खील-बताशे हैं, और ये हैं बच्चों के लिए मोमबत्तियां।'

मोमबत्तियों का नाम सुनकर रामदयाल का सारा गुस्सा पंख लगा गया। उसे लगा, उसके वारिसों ने सूरज के वारिसों के हाथ संदेशा भेजा है। परने को उसने मस्तक से लगाया, चूमा और हार सा बनाकर गले में लटका लिया। खील-बताशों में सुदामा के तंदुलों जैसी महक ही तो थी।

उसका मुरझाया चेहरा खिल उठा। उसे लगा, उसकी तपस्या, उजाले को झोंपड़ियों में झांकने को मजबूर कर रही है।

आज कहीं घाची और प्यारा होते तो फूले नहीं समाते। वे नहीं तो क्या, उनका वारिस तो जीता जागता है। उनकी जलाई हुई जोत को वह झक्खडों से बचाता आ रहा है। वह इसे आंच भी नहीं आने देगा। जितनी देर इस जोत की रोशनी कुल्ली-कुल्ली और वेहड़े-वेहड़े में उनके असली वारिसों तक नहीं पहुंच जाती।

हाथ को झोला उसे बोझिल-बोझिल सा लगा। अपना बोझ उथार कर उसने साधु के कंधे पर लटका दिया। वह जाए और इसका कण-कण वेहड़े में रहते रामुओं में बांट दे।

और खुद वह, साधुओं की ओर से कंधों पर लटकाई जिज़्मेदारियों की गठड़ी को संभालता, लंबे-लंबे डग भरता, कोठी की तरफ बढ़ने लगा।

हिंदी अनुवाद : शाकिर पुरुणार्थी
भोड़ी बाजार, जगराओं, जिला लुधियाना

खाना-पुरी

पंजाबी कहानी : मित्तर सैन मीत
हिंदी अनुवाद : शाकिर पुरुणार्थी

बुध सिंह बहुत परेशान था। महीने का अन्तिम दिन आ भी टपका था, किंतु बद-किस्मत से अपने कोटे का एक भी केस नहीं पकड़ा गया ता।

एसएसपी की सज़्त चेतावनी उसके कानों में गूज रही थी और भीतर ही भीतर घुन की तरह खाए जा रही थी। जत्थेदारों की मिन्नतें करके बमुश्किल उसने कैनेडा जैसे इस थाने में बदली कराई थी। यदि आज भी कोई केस नहीं पकड़ा गया तो नोटों की कान हाथ से खिसक जानी थी। पुलिस लाइन की रुखी रोटियां, रात-रात भर का पहरा और सज़्त परेड के बारे में सोच-सोचकर उसे कपकपी छिड़ जाती।

ऐसा नहीं कि पूरा महीना वह पैसे बनाने में ही लगा रहा था। पिछला सारा सप्ताह तो उसने थाने के समूची अड़तालीस गावों की खाक छानने में लगा दिया था। थाने में लटकाई हुई लिस्ट के हर ब्लैकिए और अमली पर वह रेड कर चुका था। बुरी किस्मत एक भी केस ऐसा नहीं मिल पाया जो एफआईआर रजिस्टर का मुंह देख सके।

इस थाने में वह नया-नया तब्दील होकर आया था। इसीलिए शायद डर से कोई मखबिरी नहीं करता, जो भी चार-पांच मुखबिर उसने हत्थे चढ़ाए थे, वे नशा-पत्ता लेकर ऐसे उडंछू हुए कि आज तक दिखाई नहीं दिए। इस मुसीबत में छिन्दे ने ही उसे आशा की किरण दिखाई थई। वह बेचारा दिन रात एक करके सुन्दर के भुक्की बेचने की भिनक ले आया था।

उसी सुन्दर को पकड़ने की योजना बनाता वह रात भर करवटें बदलता रहा। डरता रहा, कहीं कोई और ही रेड न मार दे। कहीं, कोई सिपाही ही सुन्दर को भेद न दे आए। रात भर जागता रहा और पीरों-फकीरों की मन्नतें मानता रहा।

सुबह उठते ही नहा धोकर पाठ किया। वर्दी कसी। दो वफादार सिपाहियों को साथ लेकर तारों की छांह में ही सुन्दर के कोठों की ओर कूच कर दिया।

शिन्दे से उसे आशा नहीं थी। लगता था, यूं ही बीस रुपयों के लालच में उसे भरमा गया था। अन्यथा यह कैसे हो सकता है कि सुन्दर सरेआम भुक्की बेचता हो और अभी तक किसी ने उसे पकड़ा न हो। फिर भी किसी आशा में बंधा वह चला आया था।

सुन्दर के कोठे के भीतर से आती-जाती अमलियों की कतार देखकर खुशी उससे संभाली नहीं जा रही थी। वह चाहता तो चार-पांच अमलियों को घेर कर अपने कोटे के केस पूरे कर सकता था। किंतु उसने जड़ को हाथ डालता ही उचित समझा। केस भी बनाएगा और साथ में मोटी फीस भी लेगा।

सुन्दर के कोठों में पहुंचकर साथी सिपाहियों ने उसे घूरा। सुन्दर को पकड़ने का क्या मतलब? वह थानेदार का मुखबिर है और हिस्सेदार भी। बुध सिंह यदि थाने में ही बता देता तो वे काहे को टांगें तुड़वाते। बुध सिंह ने उनकी चेतावनी की कोई परवाह नहीं की।

हिस्सेदारी मतलब होता है आदमी लुक-छिपकर धंधा करे। पुलिस के हाथ न आए। रंगे हाथों पकड़े जाने पर छोड़ देने का ठेका नहीं होता। बुध सिंह ने हिस्सेदारी पर छोटा सा भाषण झाड़ा और सुन्दर को आगे लगा लिया।

हुआ वही जो सिपाही कहते थे। वह तो टूटी सी साइकिल पर क्विंटल भर की देह को घसीटता अभी शहर के दरवाजे तक भी नहीं पहुंचा था कि सुन्दर के बैली (बदमाश) बेटे नए मोटर साइकिल पर सीटियां मारते थाने में भी पहुंच गए।

'ओए। तुझे अपने मुखबिर ही मिला था पकड़ने को? और अड़तालीस गांव मर खप गए क्या? यह बोरी सी उठाकर माल-खाने में रख दे, फिर कभी काम आ जाएगी। इसे जाने दे परे।'

थाने में घुसते ही कुर्सी से उचक-उचक उठते थानेदार ने उसे झाड़ डाली।

बुध सिंह ने चोर आंख से देखा, हौले से थानेदार के बराबर पड़ी कुर्सी पर सुन्दर बैठ चुका था। उसके लड़के गर्म-गर्म चाय की चुस्कियां ले रहे थे, साथ ही मुंछों को ताव भी दे रहे थे।

बुध सिंह का चेहरा झुलसने लगा। लाख जतन करने पर भी वह अपनी कांपती हुई टांगों को रोक नहीं सका। माथे पर टपकी पसीने की बूंदे धार बनकर उसकी गर्दन तक पहुंच गई।

बिटर-बिटर तकती उसकी छोटी-छोटी आंखों ने थानेदार को महीने का अंतिम दिन होने की याद दिलाई।

सुन्दर ने उसकी सवालिया आंखों पर रहम किया। वह स्मगलर अवश्य था किंतु स्वार्थी नहीं। अपने पर हुए एहसानों का बदला उसने तुरंत ही चुका दिया। धीरे से उसने थानेदार के कान में फूंक मारी और थानेदार ने हवलदार के।

'जा उठा ला मंगू को, शहतूतों वाले कुएं पर भट्ठी लगाए बैठा है। देखी मुखबिरी और अपने भट्ठियों के केस भी कम हैं। पोस्त का तो पहले ही ट्रक भरे बैठे हैं।'

थानेदार ने उसकी पीठ भी थपथपाई कसके छाती से लगाया।

खुशी से निहाल हुए बुध सिंह की आंखें चीते की तरह चमक उठीं। पसीना पोंछकर परे फेंका और साइकिलों के रुख कुएं की ओर मोड़ लिए।

ताजा लाहन की भीनी-भीनी खुशबू वाले हवा के पहले झोंक ने ही बुध सिंह को नशा चढ़ा दिया। सिपाहियों ने होठों पर जीभ फेरी। पहले तोड़ की गर्म-गर्म शराब पिए जैसे युग बीत गए थे।

स्टोर वाले कोठे में घुसते ही सिपाही मंगू की बीस-बीस लिटर की केनियों पर टूट पड़े। पुराने सिपाही ने टेस्ट से ही गुजारा कर लिया किंतु नए से नहीं रहा गया। झिझकते हुए उसने टीन के डिब्बे से ही लौंग-इलाचियों वाली शराब के दो बड़े से पैग चढ़ा लिए।

मंगू बहुतेरे तरले किए, शराब की भट्ठी से उसे कोई वास्ता नहीं। यह तो गांव के सरपंच ने लगवाई थी। उसे भी कौन सी बेचनी थी। वह तो अगले महीने गांव में होने वाली राजनीति पार्टी के इज्लास की तैयारी कर रहा था।

'तेरे सरपंच को भी समझ लूंगा मैं। वह भी अपराध का भागी है।' बुध सिंह ने अपनी छोटी-छोटी मूंछों को ताव दिया और चार उसकी गर्दन पर जड़ दी।

कांपते-कांपते मंगू ने चादरे की गांठ से बीस-बीस के नोटों की पांच-चार बत्तियां उसकी जेब में ठूंसने की कोशिश की। बुध सिंह ने एक ही झटके में नोटों को धरती पर बिखेर दिया। सिपाहियों का जी ललचाया। बुध सिंह की आंखों में बरसती आग को देखकर वे बेबसी से चुप रहे। चलो, बीस-बीस लीटर वाली शराब ही काफी है। सप्ताह भर छक पिएंगे, साथ में सौ-सौ की बेचेंगे। बुध सिंह लिखा पढ़ी करता रहा, वे पीपल के नीचे बैठे हिस्से डालते रहे।

बुध सिंह को समझ नहीं आई कि घंटे भर में ही जगह-जगह तारें कैसे खटक गईं। डीएसपी का अर्दली रुक्का लिए आ धमका।

एमएलए अपने साहब के पास बैठा है। साहब का हुक्म है, उससे पूछे बिना कोई कार्रवाई न की जाए।

बुध सिंह बच्चा नहीं था कि समझ न सके कि क्या हुक्म मिलने वाला है। गुस्से में भरे हवलदार ठोकर मारकर सारा समान इधर-उधर बिकेर दिया। टूटी हुई साइकिल पुनः साहब की कोठी का रास्ता नामने लगी।

'बेटे, तुम इस हल्के में नए-नए आए हो। पहले आदमी को परख लिया करो, फिर हाथ डाला करो।'

बूढे साहब ने उसे बेटी-बेटो की तरह समझाया।

एक बार जब व हाथ झाड़ कर थाने में घुसा तो सूरज सिर पर आ गया था। तीस-चालीस किलोमीटर साइकिल चलाकर उसके घुटनों का दर्द तेज हो चला था।

मुंशी की रिर्पोट तैयार थी। उसके वाला खाना ही खाली था।

थका हारा वह कोने में पड़ी मूंज की चारपाई पर ढेर हो गया। अब तक जो कुछ भी उसके साथ बीती थी, उससे उसे विश्वास हो गया था कि कल उसे पुलिस लाइन में हाजिर होना ही पड़ेगा।

'आओ उस्ताद, दोपहर की गाड़ी चैक करें। इस गाड़ी से कई बार भईये, अफीम लेकर उतरते हैं। क्या पता परमात्मा सुन ही ले।'

एक बूढ़े सिपाही ने उसे कच्ची नींद से उठाया। वह डर सा गया। एक बार तो मन हुआ चुपचाप अनुसना करके लेटा रहे। वह केस नहीं पकड़ सकता। हो सकता है सहयोगी तज़्तीशियों की ही कोई चाल हो। सोचते होंगे दफान होगा। किंतु दफान होकर पुलिस लाइन जाने के भय ने उसे ताकत बज़्शी और एक बार फिर वह तैयार हो गया।

बिना वर्दी के स्टेशन की गश्त करने लगे।

बूढ़े सिपाही की तजर्बेकार आंखों ने चमत्कार दिखाया पहले ही भईये के कनस्तर में से तीन किलो अफीम निकाल ली।

भईये ने टूटी-फूटी पंजाबी बोलकर जिले के नामी स्मगलर का कारिंदा होने का रौब जमाया। बुध सिंह की नसें तन गईं। भईये के कंधों पर डंडे बरसाकर उसने स्मगलर का स्वागत किया।

'उस्ताद अफीम असली है। पूरे तीन हजार में बिक सकती है। जिसे चाहो दे दो।' एक सिपाही ने थोड़ी सी मुंह में रखकर अफीम की तारीफ की।

भइया भी कुछ कम तजुर्बेकार नहीं था। पेशाब के बहाने बूढ़े सिपाही को एक तरफ ले गया।

वह जब वापस आया तो सिपाही की जेब में दो हजार के नोटों की गुट्टी थी।

'तीन की अफीम। दो नकद। बन गई दिहाड़ी उस्ताद।'

सिपाही ने जेब का ढकना उठाकर बुध सिंह को लक्ष्मी के दर्शन कराए। भईये को दो चार पोले-पोले थप्पड़ लगाए। हवलदार से पूछे बगैर ही भईये को भाग जाने और फिर कभी इस शहर में न घुसने का हुक्म भी सुना दिया।

'ओए, छोटा मुकद्दमा तो बना ही देते। शाम को क्या रिर्पोट देंगे। सभी तज़्तीशियों के कोटे से अधिक केस पकड़े हुए हैं। मैं ही सिफर हूं।'

हवलदार दो-चित्ती में था। न तो उसका दिल घर आई माया को लौटाने का होता था और न ही बिना केस बनाए मुलजिम को छोड़ने का।

'इसे यदि थाने में ले जाते तो हमारी पोल न खुल जाती। हर किसी ने हिस्सा मांगना था। हो सकता है किसी अफसर का फोन ही आ जाता। जब से नया कानून बना है। उस बेचारे की तो जान ही निकल जाती है। जब पकड़ा जाता है, दस साल कैद और एक लाख जुर्माना कोई मखौल नहीं।'

'केस भी पकड़वा देते हैं। सांसियों की झोंपड़ियों की तरफ चले। वहां होगी तेरी खाना पुरी।'

तनिक सोचकर सिपाही ने युक्ति निकाली।

तुरंत अपना शिकार ढूंढने वे झोंपड़ियों की तरफ हो लिए।

'ओए, आओ धन्ने। यह ले पचास का नोट और लगा दे अंगूठा। यह सरदार नया आया है। एक छोटा सा केस चाहिए। कचहरी में तेरा इक्बाल करा देंगे। खर्चा भी सारा हम ही करेंगे।'

ढाब पर खड़े धन्ने को आवाज देकर सिपाही ने पचास का नोट दिखाया।

न भी सरदार। पिछली पाल बड़े सरदार ने भी यही कहा था, बाद में पचास बोतलों का केस बना दिया। अभी तक पेशियां होती हैं। .. और फिर मुझे तो शादी पर जाना है।

बहाने बनाता धन्ना लंबे-लंबे डग भरता झोंपड़ी में जा घुसा।

पता नहीं सांसियों को क्या सांप सूंघ गया है। पहले तो कभी किसी ने जवाब नहीं दिया था। आज न तो धन्ने पर पचास के नोट का असर हुआ, न ही शीशे सी चमकती अफीम ही नत्थू को भरमा सकी।

उलटा, झोंपड़ियों में खुसर-फुसर होने लगी। कई नौजवान और कई उन्होंने नज़्बरदार के घर में इकट्ठे होते देखा।

'यहां से जाओ भई सरदारो। हमें अब यह धंधा नहीं करना कोई और जगह ढूंढो।'

'हम फिर दूसरे तरीके से भी ले लेंगे।' गुस्से में भरे बुध सिंह ने आखिरी वार किया।

'दूसरा तरीका हम भी जानते हैं। जिस दिन किसी ने जुर्म किया, सौ बार केस बना देना। हमें झूठे केस नहीं भुगतना।'

देखते-देखते एक-एक करके जुटते नौजवानों ने नज़्बरदार के पीछे दीवार सी बना ली।

बूढ़े सिपाही पारखू कानों ने झोंपड़ियों में छनकते तकलों, दरान्तियों और खुर्पों की आवाजें सुनी।

'हम लोग बगैर वर्दी के हैं। कोई बखेड़ा न खड़ा हो जाए। अवश्य यहां वे सिर फिरे ड्रामे खेल गए होंगे। तभी तो यह लोग इस तरह चबर-चबर बोल रहे हैं। पहले भी इन्होंने एकबार थानेदार पर हमला किया था। बाद में कोई भड्डुआ नहीं पूछेगा। अफसर भी इनका पक्ष लेंगे।'

उसने इशारे से बुध सिंह को समझाया। बुध सिंह का दिल भी ऊपर-नीचे हो रहा था। टक्कर टालकर उन्होंने सुख का सांस लिया।

साये लंबे होने लगे थे। सूरज की आखिरी किरणों को देख, हवलदार को विश्वास हो गया कि इस थाने में उसके गिनती के घंटे बाकी हैं।

गर्दन झुकाए च्योंटी की चाल चलते वे थाने की ओर बढ़ने लगा। किसी सूरत भी थाने जाने का बुध सिंह का मन नहीं हो रहा था। बार-बार वह पिछड़ रहा था। उसे लालच नहीं करना चाहिए था, भईये पर केस बनाना चाहिए था। पैसे का क्या था? सारा महीना पड़ा था कमाई करने को बेकार सिपाहियों की बातों में आ गया। इनका क्या है। पैसों से जेबें भर ली। कोई पूछ-गिच्छ नहीं, कोई पड़ताल नहीं। अपनी तो जून ही बुरी है। किसी महीने यदि कोई केस नहीं पकड़ा तो चलो लाइन हाजिर।

अनायास बुध सिंह का हाथ नोटों से भरी जेब से टकराया नोटों का पुलिंदा था, किंतु खुशी का एक कण भी नहीं। अगर कहीं यह अड़ियल साहब ऊपर न बैठा होता तो ओएएसआई ब्रांच वालों के लिए एक सौ का नोट ही पर्याप्त था। वे तो सारी की सारी रिर्पोट हज्म कर जाते। यह तो पता नहीं किसी बीच की पैदायश है कि एक-एक अक्षर खुद देखता है। क्या मजाल जो एक केस भी कम रह जाए।

मुर्दा-पशु रखने वाले कोठे की बदबू ने उसका ध्यान बढ़ाया। पगड़ी का पल्लू मुंह के गिर्द लपेट कर उसने दूर तक नजर दौड़ाई। गिद्ध किसी मुर्दा गधे की हड्डियां नोच रहे थे।

सालों को गधा ही मिला है खाने के लिए।

दो-चार गालियां देकर बुध सिंह ने साइकिल तेज कर ली।

अभी वह बीस कदम भी नहीं गया था कि नगर पालिका की तरफ से लगाए हुए गंदगी के ढेर पर लड़ते दो लड़कों को देखकर उसके साइकिल की स्पीड मध्यम पड़ गई। उनमें कोई बारह साल का सिर मुंडा लड़का कुछ ज्यादा ही तेज था। अपनी बगल के बड़े थैले (बगली) को परे फेंक कर उसने अपना खुरदरा बाया हाथ अपने से आधे फुट ऊंचे

लड़के की बोदियों में डाल दिया था। बोदी वाले लड़के के शरीर पर लटकता एक ही कुर्ता चीथड़े हो गया था। शायद इस सिर मुंडे ने ही किया होगा। सुराखों में से झांक रहे चमकते काले शरीर पर नाखुनों के निशान साफ दिखाई देने लगे थे। काला भी कुछ कम नहीं था। उसने अपना दायां हाथ दूसरे की कछनी के नाड़े में फंसा लिया था। और वह करता भी क्या। न तो उसके सिर पर कोई बाल था, न कमर पर कोई और कपड़ा। खाली बचता एक-एक हाथ उन दोनों ने उस मोमी कागज को अपनी-अपनी ओर खींचने में लगा रखा था, जिसके कारण उनका महाभारत छिड़ा था।

खाकी पगड़ी और लाल बूटों वालों को देखकर वे सहम गए। सिर मुंडे ने कागज वाला हाथ पीछे खींच लिया। काले की पकड़ भी ढीली पड़ गई। हवा का हल्का सा झोंका कागज को उड़ाकर हड्डा रोड़ी की तरफ ले उड़ा।

आंख बचाकर खिसकने ही लगे थे कि बुध सिंह की कड़कती आवा ने उन्हें कंपा दिया।

'किधर भाग रहे हो बहन के यारो? कौन सी चोरी का माल बांट रहे थे?'

बूढ़ा सिपाही तुरंत बुध सिंह की स्कीम समझ गया। उसने साथ वाले सिपाही को आंख मारी। तीनों ने मिलकर उन्हें घेरे में ले लिया।

'कुछ भी तो नहीं जी। हम तो ढोहों के लड़के हैं। कांच और लीरें उठाते हैं। यह मोमी कागज मुझे मिला था। यह कहता है मेरा है।'

सिर मुंडे ने आंखों पर जमी धूल को दायीं बांह से पोंछते हुए तरला किया। कांपती टांगों पर खड़ा रहने में वह असमर्थ दिख रहा था।

हूं। दंगा-फसाद भी करते हो। साले, कुत्ते, हरामी। बांध ओए ध्यान सिंह इनको। थोड़ा सा फैंटा चढ़ेगा तो खुद ही बकने लगेंगे सबकुछ।

'हमारी कैसी लड़ाई है। हम तो सगे भाई है। सारा कागज इसे दे दो।' हाथ जोड़कर हवलदार के पैरों पर झुकते काले ने तरला किया।

'परे मर। कैसी बू आती है। खारिसजदा कुत्ते की तरह। थाने जाकर देखेंगे।' बुध सिंह ने बालों से पकड़कर उसे झटका दिया।

'अब हम कभी नहीं लड़ेंगे। थाने मत ले जाएं। मेरी चाहे सारी बगली इसे दे दें।' सिर मुंडा बूढ़े सिपाही के सामने गिड़गिड़ाया।

बूढ़े सिपाही के करारे थप्पड़ों ने उसकी जबान बंद कर दी।

फिर सारे रास्ते, उनमें किसी को भी सांस खींचने की हिज़्मत नहीं हुई।

'किधर चल दिए थे भई? मैं रिपोर्ट भेजने से बैठा हूं। एक बस तेरा खाना खाली है।'

उनके थाने में घुसते ही मुंशी ने बुध सिंह पर एहसास भी किया और रौब भी झाड़ा।

खाना भरने के लिए तो टक्करें मारते फिरते थे। चल भर दे मेरा खाना भी। दो केस। वे भी नए एक्ट का एक तीन किलो अफीम का। एक चालीस किलो पोस्त का।

सीना फुलाकर बुध सिंह ने जोरदार हाथ मुंशी के कंधों पर रखा।

हैरान हुए मुंशी की तज़्तीशी आंखों ने थाने का निरीक्षण किया। बैरकें, हवालात सब खाली पड़े थे। दूर कोने में बैठे दो ढहों के लड़के कांप जरुर रहे थे। सिपाहियों ने उनकी बगलियां टटोल ली थीं। टूटे-फूटे लोहे और कांच-लीरों के दो छोटे से ढेर निकले उनमें से। उन्होंने तो शायद अफीम-पोस्त का नाम तक नहीं सुना होगा।

'मुल्जिम कहां है भई?'

'वह रहे। नजर नहीं आते बैठे हुए। साले भूखों मरते कूड़े के ढेरों से गंदगी उठाते फिरते हैं। दस बारह साल जेल में रह कर होश आ जाएगी। बढ़िया खाएंगे। बढ़िया पहनेंगे। टीवी मुज़्त में।'

कहते हुए बुध सिंह मंद-मंद मुस्कराया, तुरंत उसे अपनी मुस्कराहट खोखली सी लगी। शर्मसाल सा हो, वह चुप हो गया।

चारों तरफ, अंधेरा फैल चुका था। कभी-कभी दूर किसी रोते हुए कुत्ते की आवाज सुनाई देने लगी थी।

उदास हुए मुंशी ने जाबता पूरा करने के लिए लड़कों की तलाशी ली। कोई आपत्तिजनक चीज तो नहीं? नहीं, कब्जे में लेने को कुछ भी नहीं था। न पैसे न धेला। न ही गहना वगैरा।

बूदार बगलियां उठाकर उसने छप्पड़ में फिंकवा दीं। नए कानून के मुताबिक, उन जैसे लोगों का जमानत पर आना अथवा बरी होना, खाला जी का बाड़ा नहीं था।

बुझे-बुझे मन से उसने दो फटे से कज़्बल उनके हवाले किए और भारी कदमों से हवालात का दरवाजा खोला।

रिपोर्ट तैयार की और धीमी-धीमी आवाज में वायरलैस सैट पर पढ़ दी।

फारिग होकर वह भी बुध सिंह के पास आ बैठा, जो पहले ही, पहले तोड़ की आधी बोतल डकार चुका था।

बुध सिंह की निगाह, हवालात में बंद दोनों लड़कों पर टिकी हुई थी। बाहों में बाहें वे एक-दूसरे से लिपटे हुए आकाश की ओर ऐसे ताक रहे थे, मानों किसी कयामत को पुकार रहे हों।

उनकी आंखों में तक कर बुध सिंह को झटका सा लगा। सहसा उसका सारा नशा उतर गया। उसका मन हुआ वह पिंजरा खोल दे और उन पंछियों को आकाश में उड़ाने भरने दे।

सहसा लाइन हाजिर के ज़्याल ने उसके भयभीत मन को संभाला। पूरा ध्यान उसने खाली गिलास पर केन्द्रित कर दिया।

'कौन सी चिंताओं में डूब गए हो? न तो ये थानेदार के मुखबिर हैं, न सरपंच के कारिंदे। नए सांसियों की बस्ती के लोग हैं, जो तकले उठा लेंगे। इन घुगगुओं से कैसा डर।'

मुंशी ने बांह से पकड़कर उसे झंझोड़ा। खाली गिलास भर के उसने उसकी ओर बढ़ाया।

'हां-हां' कहते हुए हवलदार ने, मुंशी के गिलास से गिलास टकराया और एक ही सांस में सारे कड़े घोंट डकार गया।

सचमुच उसे कैसा डर? उसकी खानापुरी हो गई थी। अब तो एसएसपी उसकी तरफ देख भी नहीं सकता।

हिंदी अनुवाद : शाकिर पुरुणार्थी
भोड़ी बाजार, जगराओं, जिला लुधियाना

दहशत गर्द

पंजाबी कहानी : मित्तर सैन मीत
हिंदी अनुवाद : शाकिर पुरुणार्थी

चतुर्दिक छाए सन्नाटे से 'नत्थू' अनुमान लगाए बैठा था कि रात, अपने-यौवन-परिधान ओढ़ चुकी है।

कोई नहीं है, मछली के समान तिलमिलाते 'नत्थू' की आहें सुनने वाला। समूचा परिवार घोड़े बेचकर निद्रा-मगन हुआ प्रतीत होता है।

खुर्राटे भर-भर कर पड़ोसियों के बच्चों को डराने की तमन्ना, उसके भी दिल में है, किंतु कुंभकर्णी-निद्रा में निमगन सोने वाला नत्थू तो कब का मर चुका है। बेगानी सांसों के बूते पर जीने वाला यह नगण्य-सा प्राणी तो अब नींद की एक-एक झपकी के लिए कई-कई रातें छत की कड़ियां और शहतीर गिनते बिता देता है।

भूले-भटके, कभी आंख झपक भी जाए तो और भी हताश हो जाता है। पुलिसवालों की भयावह आकृतियां, उलटा-सीधा लटकाने की धमकियां और कथिथ संदिगध अपराधियों की चीखों से संत्रस्त वह खाट पर उछल-उछल पड़ता है। घंटों उसका दिल जोर-जोर से धड़कता है और सांसों का परस्पर मिलाप जैसे अवरुद्ध हो जाता है।

वैसे, जाग्रतावस्ता में भी वह सुपृ-प्रायसा होता है। ज भी-कभी दरवाजे पर होती दस्तक के आभास-प्रत्याभास, पुलिस के डंडों की भांति उसके मस्तिष्क पर आघात-सा करते हैं।

एक नहीं, दो नहीं, पूरी तीन-तीन दस्तकें उसका पीछा करती हैं।

कुत्तों के रोने की आवाजें उस रात भी इतनी ही भयानक रही थीं, जिस रात 'चन्नी' ने पहली दस्तक दी थी।

बे-धड़क, उसने दरवाजा यूं खटखटाया था, जैसे इस घर का कोई अज़्यागत हो। बिना, किसी स्वागत-वाक्य की प्रतीक्षा किए वह बैठक की और ऐसे चल पड़ा था जैसे घर का मालिक हो।

जितनी देर वह घर मे रहा, अपना हुक्म चलाता रहा। बत्ती नहीं जलाना, धन्नो को नहीं जगाना, जल-पान के लिए उसके पास समय नहीं।

अवकाश तो नत्थू को भी नहीं था। कच्ची नींद से जागने के कारण, उसे जमाही पर जमाही आ रही थी, दो शिज़्टों में काम करने के कारण उसका अंग-अंग टूट रहा था। अगली शिज़्ट शुरु होने में मात्र तीन घंटे शेष थे। नींद पूरी न हुई तो कई साथियों की तरह वह भी हाथ-पांव कटा सकता था।

जल्दी-जल्दी में नौजवान ने एक छांटा सा भाषण दिया। केन्द्रीय सरकार की सौतेली मां वाली नीति के बारे में, सज्प्रदाय की मुक्ति के बारे में। धर्म-युद्ध और नौजवानों की शहीदियों के बारे में।

'मिन्दर ने बताया था, तुम भी धर्म-युद्ध में कूदना चाहते हो लो, यह बैग संभाल कर रखो, मिन्दर जैसा कोई खुद ही ले जाएगा.... मैं कभी फिर आऊंगा, तेरी गरीबी दूर करने।'

बुक्कल के नीचे से बैग निकालकर नौजवान ने मतलब की बात छेड़ी तो नत्थू को कंपकपी छिड़ गई।

'इनमें दुश्मनों को सोधने के लिए हथियार हैं। छेड़छाड़ मत करना.. कहीं और बात भी नहीं करना.. तुज्हें मालूम ही है, गद्दारों का क्या हश्र होता है....।'

इससे पहले कि अंतिम आदेश नत्थू की समझ में आता, नौजवान अंधेरे में आलोप हो चुका था।

यह पहली रात थी, जब नींद ने उसे अलविदा कही थी.. जब मस्त चाल चल रही उसकी कबीलदारी की गाड़ी को धक्का लगा था।

बैग से, वह सर्प-सदृश्य डरता रहा। इस बला को छिपाए भी तो कहां? खाट के नीचे? बिस्तरों में? या फिर पड़छत्ती पर? धन्नों, बंसों अथवा बापू यहां तो कोई भी हाथ मार सकता था।

एक दो बार मन हुआ भी क्यों न मालिकों से परामर्श करके बैग को पुलिस के हवाले कर दे। फिर अनायास उन खबरों की याद हो आती जिनमें मुखबिरों के समूचे परिवारों को मारने का उल्लेख होता।

फूलों की भी टहलकी अपनी छोटी सी फुलकारी को वह आग में नहीं झोंक सकता था। कितनी साधों से तो उसकी कबीलदारी सहज समतल हुई थी।

अंग्रेजी को मुंह मारते 'बंटी' को देख उसकी सारी थकावट उतर जाती। शहर में आकर उसे मालूम हुआ था कि आधे से ज्यादा अफसर इन्हीं की बिरादरी के हैं। उन्हें, न केवल नौकरी ही झटपट मिल जाती है, बल्कि तरक्की भी दिनों में हो जाती है। सरकारी वजीफे पड़े आठ में, वहां टाट पर बैठने वालों को पढ़ाता ही कौन है? बंटी को उसने मॉडल स्कूल में दाखिल कराया। करीब सौ रुपये महीने ही अधिक खर्च उठता था। अभी हाथ जरा तंग है तो क्या हुआ? फिर तो उमर भर मौज उड़ाएगा।

स्वयं, उसने भी तो बाप के गले से पंजाली उतारी थी। लोगों की बेगारे करते-करते उसकी हड्डियां घिस गई थीं, बीसियों रोग चिमट गए थे। नहाने-धोने, धूप सेंकने और परमात्मा का नाम जपने के लिए फारिग कर दिया था बापू को।

धन्नो को भी किसी को झाड़ू-बुहारी करने की जरुरत नहीं। आराम से बैठे घर के भीतर। मन हुआ तो मशीन पर चार स्वैटर बुन लिए, अन्यथा वे भी न सही।

यदि ये झंझट नहीं खड़े होते तो बंसो भी दसवीं पास कर लेती। पढ़ाई में वह भी पीछे नहीं थी। बेटी की कमाई की नत्थू को जरुरत नहीं। लोगों की लड़कियां धागा-मिल में जाती हैं तो पड़ी जाया करें। वह जानता है, क्या कुछ होता है वहां। दस पास कर लेती तो कहीं न कहीं नौकरी पर टिक जाती। नौकरी कर रही लड़कियों के लिए, लड़के वाले खुद रिश्ता मांगने आते हैं। दोनों ही नौकर हों तब तो बस मौज ही मौज है।

जितनी देर तक बूढ़ा चौधरी जीवित था, उतनी देर नत्थू को मालिकों की ओर से कोई चिंता नहीं थी। आज उनके पास बहुतेरी कोठियां और कारें हैं। किंतु चौधरी उन दिनों को कभी नहीं भूलता जब नत्थू उसे साइकिल के पीछे बिठाकर शहर लाया करता था। चौधरी ने चक्की लगाई तो नत्थू फिटर था। उन्होंने शैलर लगाया तो नत्थू फोरमैन। अब उनकी कई मिलें हैं। मैनेजर हैं।

दूसरी शिज़्ट लगाने के कारण नत्थू को गांव जाने में दिक्कत महसूस हुई तो उन्होंने तुरंत शहर में रिहायश की व्यवस्था कर दी। कारखानों के लिए उनके पास कितने ही प्लाट रहे थे। एक में उसे बिठा दिया। जगह की रखवाली भी होती रहेगी और साथ में नत्थू की गुजर-बसर भी।

शहर में आकर सारा परिवार खुशी से नाच उठा। बापू को लगता जैसे यहां आकर जादुई तालाब में नहा करनिकले पिंगले की तरह उसके सारे दुखों का हरण हो गया था। सदियों से पुश्त-दर-पुश्त चली आ रही बीमारियों का तौक उसके गले से उतर गया था। यहां न वे मंगी थे, न पुश्तैली-याचक और न बेगार कमाने वाले। यदि थे, तो केवल मजदूर। धन्नो भी खिली गुलजार सी पुलकित थी। यहां न तो किसी को जूठन अथवा उतारे हुए कपड़ों पर आश्रित रहने की जरुरत है और न ही बर्तन ताक में रखने की। कामकरों और खनका-खनका कर दाम लो।

सुनहरे भविष्य की ओर अग्रसर, ऐसे परिवार को वह स्टेनगनों के हवाले कैसे कर दे? इसी उलझन में फंसा, वह काले नाग के समान बैग पर पहरा देता रहा।

अब जब वह अपने किए की सजा भुगत रहा है, तो वह समझ नहीं पा रहा कि आखिर मिन्दर और चन्नी ने उससे कौन से जन्म का बदला लिया है? नत्थू ने तो कभी कीड़ी भी नहीं मारी। उसके बसता-रसता नीड़, तृण-तृण होकर क्यों बिखर रहा है।

चन्नी की तो उसने कभी शक्ल भी नहीं देखी थी। बस सिर्फ नाम सुन रखा था और वह भी सहयोगी साथी मिन्दर से। वह बताया करता कि चन्नी खाते-पीते सरदारों का लड़का है। यूनिवर्सिटी में पढ़ता है। पंथ की मुक्ति के लिए सबकुछ त्याग कर धर्म-युद्ध में कूद चुका है।

छुट्टी काटकर लौटा मिन्दर अजीब-अजीब सी बातें करने लगता। कभी कहता, जब चौधरी लोग पंजाब से भाग गए तो वह उनकी सिविल लाइन वाली कोठी संभाल लेगा। कभी कहता, शीघ्र ही वे इस मिल के मालिक बनने वाले हैं।

कभी-कभार, नत्थू को भी समझाता। दाढ़ी-केश बढ़ाने की प्रेरण देता। योद्धाओं की सहायता करो, कौम का भला करो.... कहता।

मन नत्थू का भी होता कि वह भी मिन्दर की तरह दोहरी शिज़्ट से छुटकारा पा ले। कभी पैंट-शर्ट पहन, हवा-प्याजी बन, रिक्शा में बैठकर सपरिवार, पिक्चर देखने जाए। किंतु ट्रेड-यूनियन वालों की बातें उसके सपने छिन्न-मिन्न कर देती। मिन्दर तो स्वर्ग जैसे दिनों के सपने देखता है। वे कहते हैं, हम मजदूर हैं। मजदूर ही रहना है चाहे कोई भी सतान बन जाए। मजदूरों की मुक्ति का मार्ग और है। वह देख भी तो रहा है। चौधरी तो मिल तक पहुंच गए हैं। वह फिटर से फोरमैन ही बना है। ओहदे का नाम बदला है। घर की हालत तो पहले जैसी ही है।

वही होनी घटते देर नहीं लगी, जिसकी उसे आशंका थी। जिस रात गर से बैग गया, उस रात इस इलाके में ढेर सारे कत्ल हुए। बच्चों के, औरतों के, कामरेडो के, सिखों के और हिंदुओं के।

मिन्दर की ड्यूटी से गैर-हाजिरी ने उसके और भी सांस सुखा दिए। उसकी मां और बहन, सबके सब थाने में बंद थी। पुलिस उसे ढूंढती फिरती थी।

गुम-सुम नत्थू रात भर, दीवरों से बातें किया करता। मासूमों का लहू बहने में अने सहयोग को महसूस करता। रोते-पुकारते बच्चों और विधवाओं के विलाप उसके दिल को कचोके देने लगते।

पंद्रह दिनों में, बड़ी मुश्किल से उसने अपने आपको संभाला। उसके बाद तो सैंकड़ो कत्ल हो चुके थे। पंजाब के कोने-कोने में यही हाल है। किसी को कौन सा सपना आता है कि कुछ दिन हथियारों वाला बैग उसके घर में रखा रहा है। सपना आया होता तो अब तक वह भी कभी का थाने पहुंच चुका होता।

दिन अधिक नहीं गुजरे थे जब एक सुबह घर को लौट रहे नत्थू को नहर की पटड़ी पर हो रही पुलिस की दगड़-दगड़ ने डराया। एक बार तो मन हुआ, साइकिल को दूसरे रास्ते में डाल ले। फिर चोर की दाढ़ी में तिनके वाले बात सोचकर वह आगे बढ़ता रहा।

आगे, वह कुछ हुआ पड़ा था जिसकी वह कल्पना कर रहा था। पुलिस मुकाबले में मारे गए दो नौजवानों की लाशें नुमाइश के लिए रखी गई थी। पुलिस राह चलते राहियों को रोक-रोककर शनाज़्त में मदद मांग रही थी।

'एक तो मिन्दर है....' स्वत: ही एक चीख-सी उसके अन्तस से निकली।

भीड़ ने कड़वी आंखों से उसकी ओर ऐसे देखा जैसे वह मिन्दर के गिरोह का सदस्य हो।

एक लाश की शनाज़्त हो गई थी। पुलिस चुप थी। किसी ने नत्थू की ओर ध्यान नहीं दिया था, बल्कि झिड़ककर उसे घर की तरफ भेज दिया।

उसी रात, एक और दस्तक हुई थी। पहली से भी खतरनाक। यह पुलिस की तरफ से थी।

उस दस्तक का ज़्याल आते ही, वह गंदगी के ढेर में गड़ा हुआ महसूस करता है। गंदगी का एक ज्वालामुखी उसके भीतर से फूट पड़ता है। हर सांस के साथ गंदगी का उच्छवास ममकने लगता है।

पहले दिन, उन्होंने यही आसान तरीका आजमाया था। मिन्दर का बयान उनके हाथ में था। लीतो-लाल करने को वह कौन सा पेशेवर बदमाश था। पहले हल्ले में ही चन्नी का ठोरे-ठिकाना बता देना था।

दो जमादार उसे टट्टियों की तरफ ले चले। गंदगी का बट्ठल भरवाना उनकी जिम्मेदारी थी।

'मन-मनसाई से बता दे, तुम्हारी बेटी का खसम 'चन्नी' कहां है? नहीं तो गंदगी से लेप दूंगा...।' कहते हुए पहलवानों जैसे एक सिपाही ने गर्दन से पकड़कर उसकी नाक को बट्ठल तक झुकाया।

'जितना भर मुझे पता है मैंने बता दिया माई-बाप.... और मुझे कुछ भी पता नहीं....' थर-थर कांपते नत्थू की सूंघने की शक्ति जवाब दे चुकी थी।

नत्थू का जवाब तसल्ली-बज्श नहीं था। जब हथियार इसके यहां से गए थे तो इसे पूरी योजना का भी पता होगा।

हाथ-पांव बांधकर उसके मुंह में गंदगी भर दी गई। डंडा थामे एक सिपाही हटकर कुर्सी पर जा बैठा। कुछ बकना हो तो इशारा कर दे, नहीं तो गंदगी खाता रहे।

अरे....ये दहशतगर्द हैं....आसान तरीकों से मानने वाले थोड़ी हैं.. इसे तो कम से कम मशीन लगाओ....। नत्थू की चुप्पी से चिढ़कर बड़े सरदार ने हुक्म दिया।

उसके मुंह से गंदगी उतरे तो महीनों हो गए, किंतु रोम-रोम में समायी हुई बू किसी साबुन से नहीं छूटी। आज दिन भी रोटी खाये या चाय पिये, उसे लगता है वह गंदगी में ही मुंह मार रहा है।

कपड़े उतारकर कम्बल पर लेटने तक, उसे पता नहीं चला था कि वह कौन सी मशीन पर चढ़ने लगा है। मोटे-ताजे सिपाही के हाथ में पकड़ी हुई लाठी से वह अंदाजा लगा रहा था कि उसके कंधों पर यह मेंह की तरह बरसेगी। लाठी फेरने के लिए तो एक ही पर्याप्त था। पांच-छह सिपाहियों का घेरा उसे डरा रहा था।

पौजीशन लेते सिपाहियों को देख, उसे महसूस हुआ और भी कुछ होने वाला है। दो ने उसे बाजुओं से काबू किया, दो रानों पर बैठ गए और पांचवा पीठ पर। हिलने-जुलने की कोई गुंजाइश ही नहीं थी।

जैसे ही चाकू की तरह मांस को चीरती लाठी उसके भीतर घुसने लगी, चीखें उससे सहन नहीं हुई। मनों बोझ तले दबे नत्थू को छटपटाने का भी कोई अधिकार नहीं था।

और धकेलो भीतर.... पाकिस्तान से लौटा प्रतीत होता है....ऐसे नहीं मानने वाला....लाठी के बढ़ते दबाव को देखकर कोई चिल्लाया।

पसीने का दरिया धरती पर बह चला। घुम्मन-घेरियों से धरती घूमने लगी। आगे क्या हुआ उसे कुछ याद नहीं।

रात में पता चला कि वह बेहोश हो गया था।

बेहोश तो अब वह हर रोज होता है। जब भी हाजत के लिए घर में रखी ईंटो पर बैठता है तो समूचा शरीर खिंच सा जाता है। भीतर का भीतर ही रह जाता है। थोड़ा बहुत कुछ निकलता भी है तो चाकुओं के गुच्छे की तरह शरीर को चीर देता है। चीखता-चिल्लाता, कच्चे जख्मों को उचेड़ता वह खाट पर आ गिरता है। तल्ख यादों के कड़वे घुंट भरने के लिए।

मशीन लगवाकर दो दिन उसे आराम के लिए मिले।

थाने में होती चीखों-पुकार उसे अपने नंबर की याद दिलाती रहती। तेज हुई दिल की धड़कन को काबू रखने के यत्न करता हुआ कई बार बुड़बड़ाने लगता।

Firवालों पर उसे बेहद गुस्सा था। किसी ने उसकी बात तक नहीं पूछी। चौधरियों ने भी नहीं। उनकी तो थाने-कचहरियों में पूरी चलती है। चाहें तो बेशक वास्तविक आतंकवादी को छुड़ा लें। ले-देकर नत्थू जैसे बहुतेरे ही यहां से पिछा छुड़ा चुके हैं।

दूसरे ही क्षण वह घरवालों को बरी कर देता। उन्हें क्या पता होगा मैं कहां हूं। खुद उसे भी तो पता नहीं वह कौन सी जगह पर है। किसी गांव में, शहर में अथवा जंगल में? ऊंची-ऊंची दीवारें, भांति-भांति के हथियारों से लैस सिपाहियों और नत्थू जैसे दहशतगर्दों के अलावा यहां कुछ नजर नहीं आता।

जब वह थोड़ा सा चलने फिरने के योगय हुआ तो उसे डिप्टी के सामने पेश किया गया। नत्थू की फाइल पढ़ते ही उसकी आंखें चीते की तरह चमक उठीं। कान सुर्ख हो गए, भवे तप गई और होंठ फरकने लगे।

'तो यह कुछ भी नहीं बक रहा हरामजादा....।' उसका मेज पर पड़ा डंडा अनायास ही नत्थू के सिर पर बरसने लगा। एक बार फिर धूमकेतु से उसकी आंखों के आगे नाचने लगे और वह मुश्किल से बेहोश होता होता बचा।

Fोटा, मंजा (चारपाई) और शिंकजा आदि सभी उपक्रम जब उससे इकबाल कराने में असफल रहे तो आखिरी दौर का हुक्म हुआ।

आठ दिन थाने में रहकर, अंग-अंग पिटवाकर वह थाने की शब्दावली बखूबी समझने लगा था। अंतिम पड़ाव रस्सा था। रस्से का प्रयोग कैसे किया जाएगा, इसकी उसे पूरी जानकारी थी। दोनों हाथों को पीठ पर लेजाकर, रस्से का एक सिरा कलाइयों के साथ बांधा जाएगा। वृक्ष को टहनी के ऊपर से होते, दूसरे सिरे को खींचा जाएगा। शरीर का सारा बोझ जब जड़ों से उखड़ रहे कंधों पर पड़ेगा तो वह चीखेगा, चिल्लाएगा और जज़्मी चिड़िया की तरह फड़फड़ाएगा। कुछ ही मिनटों में या तो वह कुछ बकेगा अथवा थक कर गर्दन लटका देगा। फिर उसे नीचे उतारा जाएगा। मालिशें करके, नीम-गर्म दूध पिलाकर अगली कार्यवाही के लिए तैयार किया जाएगा।

नत्थू चाहता था कि जल्दी-जल्दी सारे तरीके उस पर आजमा लिए जाएं, ताकि फिर उसे भी खतरनाक दहशतगर्द गरदान कर किसी नहर के किनारे लेजाकर गोलियां मार दी जाएं। मौत की वह बड़ी अधीरता से प्रतीक्षा कर रहा था। यहां तो आत्महत्या का भी कोई साधन नहीं था।

रस्से के साथ लटक कर अभी उसे पहली चीख ही मारी थी कि एक चमत्कार सा होता उसे नजर आया। आंखों के आगे छाई धुंध में से उसे डिप्टी के साथ खड़े चौधरियों के छोटे काका का आभास हुआ। झां-झां कर रहे कानों ने सुना मानों चौधरी पूछ रहा हो :

'तुम यदि सच्चे हो तो मैं छुड़ाऊं?'

डिप्टी के इशारे पर रस्सा ढीला हुआ। नत्थू के पांव जमीन पर आ टिके। हाथों का सहारा लेकर वह धरती पर बैठ गया।

'तुझे पता है ये गोली भी मार सकते हैं।' डिप्टी को दज़्तर की ओर जाते देखकर चौधरी ने पुनः बात चलाई।

'डिप्टी मेरा मित्र है.... उसी ने मुझे बुलाया.... सेवा करनी पड़ेगी... मैं थोड़े में निपटा दूंगा।'

'मुझे यहां से निकालो.. जैसे चाहो करो.. मुझसे अब और नहीं सहा जाता.... या फिर गोली मरवा दो....।' अधिक वह बोल नहीं पाया। धक-धक करते दिल की धड़कन एकदम बंद होने लगी थी।

फिर, जब उसने आंख खोली तो वह अपने घर में था। बूढ़ा बाप, वाहेगुरु-वाहेगुरु कहता उसके सिर को सहला रहा था। धन्नों तलियों पर टकोर कर रही थी और डरे-सहमे बच्चे बिटर-बिटर तांक रहे थे।

'चौधरियों ने अपनी गिरह से तीन हजार देकर तेरी जान बज़्शी कर वाई है। वर्ना उन्होंने ने तो मुकाबला बनाकर तुझे मार डालने की पूरी व्यवस्था कर ली थी।' थोड़ा सा ठीक होने पर बापू ने चौधरियों की मेहरबानियों के पुल बांधते हुआ बताया था।

और उन्हीं मेहरबानियों के फलस्वरुप आजकल तीसरी दस्तक होती है। पहली दोनों से भी डरावनी। यह दिन-दिहाड़े होती है, दिन में कई-कई बार होती है। चौधरियों की कि तीन किसी नई बेगार का संदेश लेकर आती है। सिर चढ़े कर्जे की याद दिलाती है।

दुबका हुआ नत्थू सबकुछ सहन करता रहता है। नई दस्तक से पीछा छुड़ाने के लिए बापू ने बैटरी और लाठी संभाल ली है। मशीनों पर काम करना तो उसके बस का नहीं, चौकीदारी तो कर ही सकता है।

धन्नो, मालिकों की कोठी की सफाई करने जाती है। कपड़े धोती है, बर्तन मांझती है। आखिर चौधरियों का उन पर अहसान जो ठहरा।

बंसो ने किताबों वाला थैला खूंटी पर लटका दिया है। भाड़ में जाए ऐसी पढ़ाई। चूल्हा गर्म रखने के लिए वह धागा मिल में जाने लगी है।

हड्डियों के पुनः सशक्त होने की आशा मन में संजोए, भीतर पड़ा हुआ नत्थू सोचता रहता है कि आखिर दहशतगर्द है कौन? चन्नी, स्वयं वह, डिप्टी....या फिर चौधरी?

हिंदी अनुवाद : शाकिर पुरुणार्थी
भोड़ी बाजार, जगराओं, जिला लुधियाना

नील-कण्ठ

पंजाबी कहानी : मित्तर सैन मीत
हिंदी अनुवाद : शाकिर पुरुणार्थी

दूसरा दिन भी, अन्तिम सांसों पर आ गया है। मरुस्थल-सा तपता मन तपता ही जा रहा है। क्या करे बेचारा? प्यार की ठंडकें बांटती, सुमिदा की एक भी झलक अभी तक उसे प्राप्त नहीं हो पाई।

जैसे तैसे, पल-प्रतिपल समय हाथ से फिसलता जा रहा है। उसी अनुपात में, मेरा मन भी लहूलहान होता जा रहा है। उठती-बैठती, नाचती-कूदती, हर समय मेरी आंखों में आंखें डाल रखने वाली सुमिदा, पहाड़ जैसे दो दिन, महज, पीठ दिखा कर ही गुजार दे, यह कोई शुभ-शकुन थोड़ी था।

तीन दिन पहले आए पत्र को फढ़ कर मेरा माथा ठनक गया था। पहली बार उसने मिलने से मजबूरी जाहिर की थी। अन्यथा मिलन भी उत्सुकता में आए उसके पत्र ही जल सदृश्य ठहरे मेरे मन के भीतर पत्थर फेंककर लहरें उत्पन्न कर देते थे। विरहागिन में संतप्र सुमिदा के दिल की गहराइयों से उठती हूक को व्यक्त करते काव्य-मय पत्र मेरे अन्तस में ज्वार उठा देते। प्रत्येक पंक्ति में अपनी खुशनसीबी की झलक देखता, सुकोमल, मृदुल बांहों में सिमटने की कल्पना करता मैं एक-एक पल को एक-एक युग के समान ओढ़ने लगता।

सुकुमारी सी सुमिदा जो पूरे पांच साल मेरे मस्तिष्क पर छाई रही है, उसकी बेरुखी सहन करुं तो कैसे? उसके धड़कते दिल से उठती मधुर तरंगो और संगीतमय स्वरों को सुन-सुनकर मेरा अपूर्ण जीवन पूर्णता की ओर अग्रसर हुआ। विद्रोही होकर तपते मेरे मन को उसकी पलकों की छांह से ठंडक मिली, उसके प्रण्य स्पर्श ने शीतल जल कम के समान, उसकी मैल को धोकर निर्मल बनाया। चिन्ताओं की कालिमा जाने कहां उडंछू हो गई। संसार की रंगीनियों से साक्षातकार कराने वाली यही सुमिदा ही तो है।

उसके पास अब मेरे लिए समय नहीं रहा? मेरी ओर वह निहारती क्यों नहीं? ये प्रश्न पीछा ही नहीं छोड़ रहे।

मैं देख रहा हूं, वह अपने नए बहनोई पर लट्टू है। किसी न किसी बहाने, उसके पास आ बैठती है। उसकी आंखों में उसी तरह ताकती है जैसे कभी मेरी आंखों में तका करती थी। मेरे सीने पर सांप लोट रहे हैं। मन होता है अभी वापस उड़ान भर जाऊं, किंतु भाई साहब की लगाई हुई ड्यूटी अभी पूरी नहीं हुई। जितनी देर घर में चल रहा फंक्शन सज़्पन्न नहीं होता, मैं जा नहीं सकता।

मुझे भाई साहब पर गुस्सा आ रहा है। उन्होंने मुझे इस झंझट में फंसाया है।

सुमिदा उनकी साली है। जब उनकी शादी हुई, दसवीं में पढ़ती थी। दो-एक बार यहां आया हुआ मैं उसके बारे में सोचने लगा था। पैन्ट-कमीज में दुलकती, छोटी-छोटी दो बेटियों को वक्ष पर नचाती यह बुलबुल, मेरे मस्तिष्क के किसी कोने अशियाना बना गई।

दो-तीन साल तो उसकी चोटियों से आगे, मैं कुछ भी नहीं सोच सका। किंतु जब वह हमारे साथ हरिद्वार गई तो अनायास मेरे जेहन पर छा गई। भाई साहब, भाभी में उलझे रहते और मैं सुमिदा में गुम हो गया। गंगा की ठंडी लहरों ने हमारे शरीरों को तपिश बज़्शी। किसी न किसी बहाने मैं उसका हाथ पकड़ता। वह गंगा में डुबकियां लगाती। जब बाहर निकलती, मेरे सीने से लिपटी होती। उसके शरीर का स्पर्श करके निचुड़ते जल को अमृत समझ मैं आचमन करता गंगा की लहरों में खोए हमारे दिलों का आदान-प्रादान हो गया। कई दिन गंगा किनारे बैठकर आजीवन साथ निबाहने के प्रण हुए। कभी बाहों में बांहें डालकर अमर आश्रम तक सैर करते हुए हम, कल्पना के घोड़ों पर सवार हो, सात-आसमानों

तक उड़ान भर जाते। और कभी सुरंग के अंधेरे का लाभ उठाते हुए हमारे संतपृ होंठ, ठंडक की तलाश में एक दूसरे में सज़्मिलित हो जाते।

वापस लौट कर लगा जैसे मेरा सब कुछ हरिद्वार में ही रह गया है। कितनी बार दिल मचला कि अकेला ही हरिद्वार की गाड़ी पकड़ लूं। गंगा की आत्मा को तो सुमिदा चुरा लाई है। उसके बिना क्या धरा है यहां?

उन दिनों मेरी पोस्टिंग सुमिदा के शहर से कुछ अधिक दूर नहीं थी। पोस्टिंग वाले शहर में से गांव पहुंचने के लिए उसके शहर से होकर गुजरना पड़ता था।

उसके शहर में पहुंचकरमेरे पांव जकड़े जाते। किसी न किसी बहाने मैं सुमिदा को फोन करता, अथवा रुकने का बहाना बनाकर रुक ही जाता। मेरा शर्मीला स्वभाव उसके घर वालों का मन जीतने के लिए पर्याप्त रहा था। और फिर कौन कोई बेगाना था। उनके दामाद का सगा भाई था मैं।

मेरे आतिथ्य का सारा दायित्व सुमिदा अपने हाथ में ले लेती। भोजन करने के लिए मुझे अपने पास ही बिठा लेती। छोटे-छोटे हाथों में नाचती, छोटी-छोटी चपातियों से निकलती किसी अमर गीत की धुनें मेरे कानों में शहद घोलती। मैं उसकी समुद्र सी आंखों में खो जाता। मुझे इस तरह तकता देख, वह लाल सूही हो जाती। कभी उसकी चपाती सड़ जाती और कभी ग्रास के भ्रम में मैं उंगली चबा लेता। हंसी-ठठोल होता। हमारी मौन आंखें कितने ही वायदे करतीं। जितनी भी देर मैं उसके घर में रहता वह मेरे आगे-पीछे नाचती रहती।

अब की बार पता नहीं क्या हो गया है उसे? एक भार भी नहीं ताक रही।

क्या यह वहीं सुमिदा है जिसने मेरे कारण सिरदर्द का रोग सहेड़ लिया था। दवा लेने के लिए पटियाला जाने का यह बहुत बढ़िया बहाना बन गया था।

उसके शहर से पटियाला तक का सफर काव्य-मय सफर होता। वह मेरे साथ सट कर बैठती। मेरी आंखों में आंखें डालकर मुस्कराती। उसके शरीर के स्पर्श से मुझे अजीब सी कपकपी छिड़ जाती। शाल को दोनों की टांगो के ऊपर बिछा कर वह मेरे हाथ में अपना हाथ दिए रखती। मुझे जैसे दुनिया भर का खजाना मिल जाता। ज्यों ज्यों हम सफर लंबा होने की मन्नतें मानते, त्यों त्यों वह और छोटा हो जाता।

हम चाहे पिक्चर देखते, चाहे महाराजा होटल के अंधेरे कमरे में बैठ कर एक-दूसरे के मुंह में ग्रास डालते। चाहे वह बारादरी के किसी हरे भरे मैदान में मेरी टांगों पर सिर रखे, मेरी आंखों में कुछ तलाश करती। हम दोनों की अन्तरात्मा एक ही दुआ मांगती - हे प्रभु। हमारे साथ को जन्म-जन्मान्तर तक इसी तरह प्यार निभाने का संभल प्रदान करना।

हमारी मुहब्बत की पींघें ऊंची होते-होते आसमान में चढ़ जाती। हम एक-दूसरे से कुछ भी बचाकर नहीं रख सके। कितनी ही बार उसने अपना तन-मन, मुझे समर्पित कर दिया।

हजारों बार उसे अपने आलिंगन में भरकर मैंने सात-समुन्दर पार उड़ जाने की कल्पना की थी। किंतु मेरी तरह, सुमिदा कभी भावनाओं के सागर में गुम नहीं हुई।

आप विवाहित हैं। हमारी शादी संभव नहीं। और फिर मुहब्बत और शादी का संबंध भी क्या है? हम सदियों पर्यान्त इसी प्रकार मुहब्बतें निबाहेंगे।

उसके इस उत्तर से मुझे अपनी शादी पर पश्चाताप होता। मुझे वह पहले क्यों नहीं मिली। काश कभी सुमिदा सदा-सर्वदा के लिए मेरी हो सकती। जिंदगी का मजा ही कुछ और होता।

ठीक है कि उसका दिल पारे सा निर्मल है, किंतु उसकी चट्टान जैसी कठोरता भी मुझे भूली नहीं। उसकी भाभी के हाथ लगे एक पत्र ने सारे घर में हंगामा खड़ा कर दिया था, किंतु वह चट्टान सहश्य अविचल खड़ी रही। मुझे मिलना उसने कदापि बंद नहीं किया। बस घर की बजाए हम स्टेशन पर मिलने लगे।

मुहब्बत के नशे में मैं ऐसा बेसुध हुआ कि मुझे पता ही नहीं चला, कब तीन साल उड़ंछू हो गए। मेरी पोस्टिंग की टर्म पूरी हो गई। लाख दौड़-धूप करने पर भी तबादला रुक न सका। मुझे पंजाब के दूसरे कोने की ओर धकेल दिया गया।

पूरे दो साल उसने दूरी का आभास नहीं होने दिया। दीवाली और नए साल के ग्रीटिंग कार्ड मेरे प्यार को ताजगी बखशते रहे। उसके पत्रों में अंकित विरह की तड़प मुझे सुकून बखशती रही। कभी-कभार वह मिलने के लिए समय नियत करती। पागलों की तरह सब कुछ बीच में ही छोड़ कर मैं उसकी बांहों में जा सिमटता।

पहाड़ जैास पिछला वर्ष उसके स्पर्श को तरसते बीत गया। मुझे उसके पत्र की जिज्ञासा थी। कई बार मुझे लगता। जैसे बहते हुए पानी ठहर गए हैं। आशंका होने लगती कहीं ठहरे हुए पानियों में सडांद न भर जाए उसकी झील सी आंखों में तक कर पुनः लहरें उठाने को मैं लालायित था।

इसीलिए मैंने उसे मिलने में पहल की। किंतु उसने तुरंत उत्तर लिख भेजा- 'मिलने का कोई रास्ता नहीं मिल पा रहा।'

सुमिदा के बड़े भाई के यहां लड़का हुआ है। उसकी खुशी में उनके घर में प्रोग्राम है। कार्ड मुझे भी भेजा गया था और भाई साहब को भी। भाई साहब कारोबार के संबंध में बज़्बई गए हुए थे, अतः उन्होंने मेरी ही ड्यूटी लगाई थी।

मेरा स्वाभिमान मुझे यहां आने से रोकता रहा, किंतु मन, सुमिदा की बेरुखी जानने को उतावला होता रहा। दुविधा में पड़ा मैं चला ही गया।

दो दिन तक प्रतीक्षा करता रहा। सुमिदा, मेरे लिए एक पल को भी अवकाश नहीं निकाल पाई। कई बार मन हुए बांह से पकड़ कर रोक लूं, किंतु वह भीड़-भड़के में खो जाती रही।

एक बार साहस बटोर कर मैं उसके कमरे में गया था। जिस गुस्ताखी से वह पेश आई उसने मेरे कल्पना के महलों को धराशाई कर दिया।

लज्जित, अवसन्न सा मैं लिहाफ में दुबक गया। मुझे वह भुला नहीं सकती। कदापि नहीं। हम जब प्यार की पहली पूणी काती थी, तब वह सोल्हवें वर्ष में प्रवेश कर रही थी। अल्हड़पन का प्यार तो चिता तक पीछा नहीं छोड़ता। मेरे लिए हर प्रकार की जोखिम उठाने वाली सुमिदा इस तरह भी पेश आएगी, ऐसा तो मैंने कभी सोचा भी नहीं था।

मेरे अन्तस का विद्रोह जाग उठता है। शीघ्रतिशीग्र मैं यहां से निकल जाने की सोचता हूं। किंतु 'पंजाब बंद' मेरी पेश नहीं चलने देता।

मुझे अकेला बैठे देख उसका बहनोई मेरे पास आ जाता है। वह सुमिदा से ही बात शुरु करता है। बड़ी सुन्दर है, बड़ी दलेर है और गहनों की बड़ी शौकीन है। वह बताता है कि उसने सुमिदा के लिए सोने की अंगूठी बनवा कर दी है। दिल्ली से हाथी दांत की चूड़िया मंगवा दी है। नए फैशन के लंहगे और सूट सिलवा दिए हैं। जो बात वह कहना चाहता है, मेरे कान उसे सुनने को तैयार नहीं। विषय परिवर्तन के लिए मैं बात को बिजनेस की ओर मोड़ता हूं।

सुमिदा की नाराजगी का उत्तर वह दे गया। वह सोने-चांदी की चमक में खो गई है। साधारण लड़की ही तो है वह। उसे अंगूठियों, छल्लों और भड़कीले कपड़ों में मान-सज़्मान की झलक पड़ी होगी। उसे क्या पता कि मेरा साहित्यक मन किसी और ताजमहल की तलाश में है। मैं मुहब्बत की दुनिया में उसे मुमताज की तरह उछीपृ करना चाहता हूं। कितने ही बाजार मैंने छान मारे, एक भी चीज अपने इसके हमसर नहीं मिली।

जो कुछ भी मेरे पास है वह तो एक ही झटके में उसको समर्पित कर सकता हूं।

लेकिन तुमने समर्पित किया नहीं न, इसीलिए पिछड़ गए। तुज्हारी लंबी जुदाई और उदासीनता ने सुमिदा को तुमसे छीन लिया।

अगले कई घंटे मैं उससे अलग होने के प्रयत्नों में गुजारता हूं। उसे भूल जाने के लिए मन को तगड़ा करता हूं। वैसे जानता हूं, दिन में हजारों बार याद आने वाली सुमिदा जेहन से निकल नहीं सकेगी।

मैं अपने साहित्यक मन को कोस रहा हूं। एक बढ़िया सा काव्य-संग्रह लिख कर उसे भेंट करने की ही सोचता रहा। ऐसा करने से वह खुद ही रोकती रही थी। कहीं उसकी शनाज़्त न हो जाए। दाज़्त्य जीवन बिखर न जाए। मैं चुप रहा। न कुछ लिखा, न ही उसे भेंट किया। मैं सुमिदा के भीतर की तकता रहा। कदापि, उसके बाह्य मूल्यों का स्पर्श नहीं कर पाया। उसे यदि गहने ही पसंद है, तो मैं उसे गहनों से लाद दूंगा। नाराज नहीं होने दूंगा।

रात भर मुझे उसकी प्रतीक्षा रही। शायद मेरे दरवाजे पर दस्तक हो, अथवा वह आंगन में आकर खांसने लगे। जैसे वह प्राय: किया करती थी। किंतु कुछ भी तो नहीं हुआ। कभी-कभी उसके हंसने की आवाज आती तो मन के अंदर लपटें सी उठ कर शांत हो जाती।

अगली सुबह भी उसका काम-काज में व्यस्त रहना मुझे अच्छा नहीं लगता। अखबार उठाकर हल्की-हल्की धूप के बहाने ऊपर छत पर जा बैठता हूं। वह कपड़े धो रही है, ऊपर तो आएगी ही।

सचमुच वह छत पर आ गई। मेरा दिल जोर-जोर से धड़कने लगता है, जैसे कभी पहली-पहली बार धड़कता था। वह जल्दी-जल्दी कपड़े सूखने को डाल देती है और नीचे उतर जाती है।

अगली बार मैं उसे घेर लेता हूं। पुछूं तो सही आखिर बात क्या है? कुछेक क्षण का सामीप्य होता है। प्रश्नों का उत्तर सुनने के लिए वह एक दिन और एक जाने का आग्रह करती है।

चुप-चाप सा मैं उन क्षणों की प्रतीक्षा करता हूं, जो उसने मेरे लिए सुरक्षित रखे हैं।

सचमुच उसने कुछेक क्षण मेरे लिए निकाल ही लिए। सुमिदा को मुझ पर शक हो गया है। उसकी शादी की बात चल रही है। शादी के बाद क्या होगा? कहीं उसके पति से बात न खोल बैठूं। मुझे उसके भोलेपन पर हंसी आ रही है। वह मेरी प्रेरणा है। उसने मेरी साहित्य कला को प्रश्रय दिया है। मैंने तन से बढ़कर उसके मन को प्यार किया है। फिर भला किस स्वार्थ-वश मैं ऐसा कदम उठाऊंगा। कितनी भी भट्टियां तपती रहें और मेरे वक्ष को झुलसती रहे, मेरी सुमिदा को आंच नहीं आ पाएगी। उसका उदास चेहरा मेरा गम है। उसकी खुशी मेरी खुशी। खुशियों के बाग कौन उजाड़ेगा?

उसके चेहरे पर छाए चिन्ता के बादल छट गए। मेरे हाथों को वह अपने हाथों में दबाती है। बाकी समय मैं खुशी खुशी गुजारता हू।

सुबह हमें बिछुड़ जाना है। कल नव-वर्ष का शुभ-आरंभ है। मुझे उसके स्पर्श की तृष्णा है।

दिलों को दिलों वाली राहों से कौन रोक सकता है। किसी न किसी बहाने वह मेरे सामने आ खड़ी होती है। शायद अपनी बेरुखी का प्रायश्चित कर रही है।

दूरी मुझसे सहन नहीं होती। उसके जलते हुए होठों पर मैं अपने होंठ रख देता हूं।

मेरे साथ लिपटकर वह मेरे भीतर समा जाने के यत्न करती है। मेरे दोनों होंठ उसने भीतर समो लिए है। उसकी आंखों में छाए खुमार को देख, मैं आपे से बाहर हो जाता हूं। आलिंगन और भी दृढ़ हो जाता है।

उससे अलग होकर मैं फूल-सा हल्का अनुभव करता हू।

तीन दिन के मस्तिष्क-मन्थन से निकले सारे विष को सुमिदा ने शिव बनकर चूस लिया है।

नील-कण्ठ बनकर वह सकल ब्रहण्ड पर छाए जा रही है और अमृत-कलश प्राप्त कर के भी मैं छोटा और छोटा होता जा रहा हू।

अकिचंन सा जीव बना मैं, सिर झुकाता हूं और उससे अलग होने के लिए साहस बटोरने लगता हूं।

उसकी आंखों में उमंड आए समुन्द्र के समक्ष खड़ा होने की मुझ में हिज़्मत नहीं है।

हिंदी अनुवाद : शाकिर पुरुणार्थी
भोड़ी बाजार, जगराओं, जिला लुधियाना

बदली

पंजाबी कहानी : मित्तर सैन मीत
हिंदी अनुवाद : शाकिर पुरुणार्थी

निर्माणधीन डैम के ठेकेदार ने जब से सुदर्शन बाबू के घर के सामने अपने ब ंगला तामीर कराया था, उसे लगता, मानों बंगले ने उसके घर की पगड़ी को हाथ डाला है। चमकते-दमकते बंगले के सामने उसका छोटा-सा कच्चा मकान, ऐसा लगता था जैसे बंगले के बचे हुए मल्बे का किसी ने ढेर लगा दिया हो।

पहले-पहले जब बंगले की स्कीमें बनाता ठेकेदार उसके घर पर आया था तो उसे बड़ी खुशी हुई थी। मीलों तक बिखरे एकान्त में रहकर वह ऊब गया था। उसे ठेकेदार को बंगले के निर्माण में हर प्रकार की सहायता देने का वायदा किया था, भले ही उसे ज्ञात था कि ठेकेदार की किसी भी सहायता के वह योगय नहीं था।

दिनों में बंगले की बुनियादें खोदी गई, भरी गई और कमरे पर कमरा यों तामीर होने लगा जैसे किसी जादूगर की जादूगरी का विकास होता है। हर सुबह, मुंह में दातन लिए सुदर्शन जब बाहर निकलता तो दूर तक लगे हुए रेत, बजरी और सीमेंट के ढेर उसे दिखाई देते। हर शाम, जब वह दज़्तर से लौटता तो सब के सब कहीं अलोप हो चुके होते और बंगले का कोई न कोई हिस्सा लिश्कें मार रहा होता।

सुदर्शन उसकी पत्नी और बच्चे सब के सब खुशी में फूले फिरते। कहते हैं-पड़ोस तो कुत्तों-बिल्लियों का भी कुछ कम नहीं होता और उनके पड़ोस में तो बड़ा ठेकेदार आ बसा था। और फिर आदमी भी भलामानस सुबह शाम आकर सुदर्शन से कहता

'कोई काम-वास हो तो बताना। आप आधी रात में हुक्म करो, हम आधी रात में ही तैयार मिलेंगे।'

सुदर्शन ने भी कोई कसर नहीं उठा रखी। उसके बंगले में इन लोगों ने हर प्रकार का योगदान किया था। दिन में कई-कई बार सुदर्शन की पत्नी चाय बना-बना कर पिलाती। जितनी देर मोटर की व्यवस्था नहीं हो पाई थी, मजदूरों ने उन्हीं के नलके पर आजमाए थे।

'बहुत पुराने ढंग का है आपका मकान। बदल दें इसे अब.. दो कमरे खड़े कर लें.. लागत भी कौन सा ज्यादा आती है। सीमेंट-सूमेंट की मदद हम कर देंगे..।' एक दिन बैठे-बैठे ठेकेदार ने परामर्श दिया।

बात, सुदर्शन को कचोट गई। उसे लगा वह तो सचमुच नरक में रह रहा है। रहने का मजा तो ठेकेदार के बंगले में है। ठंडे-ठार कमरे, फूलों की खुशबू और घास के मैदान।

'ज्यादा नहीं तो कम से कम दो कमरे तो होना जरुरी है।' सोचकर एक रात उसने अपनी पत्नी सावित्री से बात छेड़ी। सावित्री को जैसे विश्वास नहीं हो रहा था। उठकर वह सुदर्शन की चारपाई पर आ बैठी।

'आज पहली बार आपने मेरे मन की बात की है। कितने दिनों से दिलमें है कि हम भी दो कमरे खड़े कर लें। कोई आए जाए तो बड़ी शर्म आती है। दो कमरे तो गया गुजरा भी बना लेता है। घर को लीपते-पोचते मेरे तो हाथ ही झड़ गए हैं। सारी ईंटे खुरी पड़ी हैं। कभी इधर से किरने लगता है कभी उधर से। चोरी का डर अलग से है। जब चाहें, कोई दीवार फांदकर आ घुसे। मैं तो स्वर्ग में ही पहुंच जाऊं अगर आप कभी मकान खड़ा कर लें। पिछले दिनों जब लीला का पति आया तो शर्म से जमीन में गड़ती जाती थी मैं। मन हुआ घर से ही निकल जाऊं। बनी-बनाई सौ मन की इज्जत मिट्टी में मिल गई।'

सावित्री ने लंबा सा लैक्चर झाड़ा था।

'किंतु बात तो पैसों की है।'

'काम तो शुरु करो, खुद ही सब कुछ बन जाएगा। और काम तो इसी ढब से चलता है। न सावन में सूखे, न आषाढ़ में हरे। न कभी कुछ पल्ले में हुआ है, न कभी कुछ सिर पर चढ़ा है पिछले दिनों जब छक्क पूरने का खर्च आ पड़ा था, स्वत: ही कहीं न कहीं से पैसे आ गए थे। फिर ताया जी की बरसी के अवसर पर भी पांच सौ उठ गए थे। अपने आप ही अधिक आमदन हो गई। और नहीं तो दज़्तर से ही दो पैसे ज्यादा आ जाते हैं।'

उनकी बातें कहीं अध-सोई सरोज के कान में पड़ गई। नए मकान की बात सुनकर उसने लिहाफ उठाकर परे पटख दिया और उठकर बैठ गई।

'हां डैडी, कम से कम एक ड्राइंग रुप अवश्य बना लें। मैं लोगों के घरों में जाती हूं तो बस देखती ही रह जाती हूं। वह नीलम का बाप भी तो तहसील में क्लर्क है ना। उसने इतनी सुन्दर कोठी बनाई है। गीत के डैडी ने भी अब के ड्राइंग रुम बना लिया है। देखो डैडी अपने घर से तो गोबर की बदबू आती ही रहती है। मज़्मी है कि लीपन-पोचन से ही नहीं हटती। पिछले दिनों में जब रीटा आई तो नाक पर रुमाल रख कर ही बैठी रही। मेरी ऐसी बेइज्जती हुई कि बस रहे नाम भगवान का। अब हर रोज मुझे चिढ़ाती है। यदि हमारा घर बढ़िया हो तो मैं भी अपना बर्थ-डे मनाया करुं। बार-बार मैं सहेलियों को गिज़्ट देकर आती हूं, किंतु मुझे गिज़्ट लेने का मौका ही नहीं मिलता। मेरे बनाए हुए सभी डैकोरेशन पीस गर्द-गुबार से अट कर खराब हो जाते हैं। डैडी जी.. यह काम अवश्य.. जैसे भी हो.. करें।'

फिर उठकर वह साथ वाले कमरे में अपने बड़े भाई रमेश के पास दौड़ गई। इन दिनों में बीए में पढ़ता था और उसे भी यही शिकायत थी। देखा, बच्चे कैसे घटिया-घटिया महसूस करते हैं। खुलकर कभी कह भी तो नहीं सकते। आगे से आप गले पड़ जाते हैं। दुनिया कितना आगे बढ़ गई है.. बच्चे अच्छे स्कूलों, कालेजों में पढ़ते हैं। सोसायटी में रहने के लिए थोड़ा-बहुत स्टैंडर्ड तो रखना ही पड़ता है.. तभी निर्वाह होता है

'मैं कौन सा बढ़िया-बढ़िया महसूस करता हूं। मेरा कब दिल नहीं चाहता। मैं सर को जाते समय खुद बाबुओं के घरों में जाता हूं, तभी उन्हें साथ लेता हूं। मेरा दिल भी चाहता है वे हमारे घर आएं। इकट्ठे बैठ कर गपशप करें.. ताश खेंलें और रेडियों सुनें, किंतु कौन पसंद करता है इस जैसे खस्ता हाल डरबे में आना। न किसी अफसर को बुलाकर पार्टी कर सकते हैं। तभी तो पिछड़ जाते हैं।'

सरोज कितनी देर तक राकेश को झंझोड़ती रही, किंतु उसकी बात को सच मानकर वह फब्तियों का शिकार नहीं होना चाहता था।

'डैडी। क्या सरोज ठीक कहती है? वे भी उसी बिस्तर में घुसड़ गए जहां सुदर्शन और उसकी पत्नी बैठे थे।'

'सच भी है और झूठ भी।'

'क्या मतलब?'

'दिल चाहता है बना लें.. किंतु बैंक-बैलेंस कहता है पैसा कहां से आएगा?'

'छोड़िए सब। ज्यादा मन सोचा कीजिए आप। वह जो पांच हजार बीमे का आपको मिला है, वही लगा दें। सुना है आपको लोन भी मिल सकता है। कुछ इधर-उधर से जुगाड़ कर लें। दो कमरों का मकान बनाना कौन सा मुश्किल है। हां, एक बात का ध्यान जरुर रखना, मेरा ड्राइंग रुम अवश्य हो। हर बार आप शिकायत करते हैं, मेरे अच्छे नज़्बर नहीं आए। पर मैं करुं क्या? यहां पढ़ा कहां जाता है? जरा सर्दी हो जाए तो बर्फ जमने लगती है। तनिक गर्मी हो जाए तो मच्छर तोड़-तोड़ कर खाने लगते हैं। लू का नाम सुनकर तो मेरे होश ही उड़ जाते हैं। पढ़ने के लिए कम-से-कम एक आरामदेह कमरा जरुर हो। जहां कोई शोर न हो, गर्मी-सर्दी का असर न हो। मेरे लिए रीडिंग रुम बना दो। फिर देखना मेरेर नज़्बर। जब कभी सुरेश के घर जाना होता है, वहां पता ही नहीं चलता बाहर कैसा मौसम है।'

'किंतु बेटे, बात तो सारी पैसों की है।'

'इसने कह तो दिया है पांच हजार बीमे का.. दो हजार के करीब में मायके से ला दूंगी.. बाकी दस हजार लोन ले लें। इतने से दो कमरे बन जाएं बस।' सावित्री ने सुदर्शन की बात टोकी।

'किंतु कुछ उतारने की भी सोचो।'

'खुद ही उतर जाएंगे। सिर्फ दो साल ही तो रहते हैं रमेश के।'

'ठेकेदार अंकल भी हर रोज कहते हैं। सीमेंट वगैरा मंगवा देंगे.. उन्हें क्या फर्क पड़ता है।' सरोज ने ठेकेदार की भी याद दिलाई।

दूसरे दिन जब सुदर्शन ने ठेकेदार से बात चलाई, सुनकर वह तो जैसे खुशी से नाच उठा। उसने स्नेहपूर्ण हाथ सुदर्शन की पीठ पर रखा और पूर्ण-सहयोग का आश्वासन दिया। वह अपने ट्रकों से बजरी, रेत और मिट्टी फेंकवा देगा। भाव के भाव खरीदवा देगा। उसको ओवरसियर नक्शा भी बना देगा। और कामकाज की देखरेख भी करता रहेगा। वह भवन निर्माण कला का माहिर है। उसके तजुर्बे के फलस्वरुप आधे खर्चे में ही योजना सिरे चढ़ जाएगी। उसने कहा था।

अगले दिन ही सुदर्शन पैसों के इंतजाम में जुट गया। अर्जियां लिखी गईं। टाइप हुईं और दज़्तरों के चक्कर लगने लगे। सुबह-शाम घर में महफिलें जमती और योजनाएं बनतीं।

फिर वह दिन भी आ गया, जब कर्जे की रकम लेकर सुद घर लौटा। घर की ओर आते हुए वह भट्ठे पर ईंटो के लिए भी कह आया था, मिस्तरी से साई लगा आया, और मजदूरों को घर का ठौर-ठिकाना भी बता आया।

दिनों में ही काम शुरु हो गया। बीस जार भूसे की तरह उड़ गए। अभी तो मुश्किल से उनके मकान के दो कमरों का ढांचा ही खड़ा हुआ था। रमेश का रीडिंग रुम और सरोज का ड्राइंग रुम और बाकी सारा काम अभी शेष था।

उनकी योजना असफल हो गई थी। सीमिंट कम पड़ गया था। जहां से आशा थी, वहां से एक तिनका भी नहीं मिला। दरवाजे, जोड़ियों का काम अभी सिर पर खड़ा था।

जैसे-तैसे दो कमरे अवश्य बन गए थे, लेकिन कई बातें खुलकर सामने आ गई थीं। जिस ठेकेदार के पड़ोस पर वे खुश हुए फिरते थे, वह निरा फ्रॉड निकला। दिन में बीस-बीस बार सहायता का आश्वासन दिलाने वाले मियां-मिट्ठू से जब उसने सहायता की याचना की तो शरीफ सा मुंह बनाकर उसने कोरा जवाब दे दिया था।

सारा स्टाक खत्म हो चुका है। नया एक्सईएनएस आया है कि एक बोरी तक हिलने नहीं देता। दो ठेकेदारों पर केस बना दिया है। बस कुछेक दिन ठहरो.. जितना चाहो ले लेना।

किंतु उससे क्या छिपा था। रोज वह सीमिंट की भरी ट्रालियां बेचता था। सुदर्शन ने स्पष्ट कर दिया कि वह मुज़्त में लेना नहीं चाहता। वह तो सीमिंट ब्लैक में खरीदने को असमर्थ है। बस कुछ रियायतों की आशा करता है। पर बोरियां तो क्या, उसने तो सीधे मुंह बात करना भी छोड़ दिया था। घंटो सुदर्शन को उसकी कोठी के गेट पर ही उसकी प्रतीक्षा करनी पड़ती।

बाद में उसे पता चला था कि ठेकेदार चाहता था कि सारी रकम सुदर्शन उसके हवाले कर दे और वह अपने ब्लैक के सामान से मकान बनाकर रकम हजम कर ले। किंतु इस तरह करना सुदर्शन को अच्छा नहीं लगा।

चलो, वह तो बड़ा आदमी ठहरा। उसे सुदर्शन से क्या प्रयोजन। कठिन समय में उसे तो जिगरी दोस्त नरिंदर ने भी साथ नहीं दिया। एक वह था कि अपनी बीवी की बीमारी की परवाह न करते हुए, नरिंदर की पत्नी की डिलिवरी पर उसे एक महीने उसके छोड़े रखा था। सुदर्शन ने जब केवल पांच सौ रुपये मांगे तो उसने साफ कह दिया था।

'दोस्त। पैसों के मामले में मैं मजबूर हूं। दरअस्ल सारा कारोबार पिता जी के हाथ में है- और तुम जो भी कहो, मैं हाजिर हूं।'

सुदर्शनर रोआं सा होकर पलट आया था। और नरिंदर को कौन सा उसने चूल्हे में झोंकना था।

काम, उनहें बीच में ही छोड़ना पड़ा। राकेश का रीडिंग रुम और सरोज का ड्राइंग रुम कहीं नजर नहीं आ रहे थे। किंतु कर्जा पूरे पांच हजार तक पहुंच गया था। दो हजार के लिए तो उसे बड़े सूद पर प्रोनोट भी भरना पड़ा था।

मकान जरुर बन गया था, किंतु खुशी उन्हें नसीब नहीं हुई। सुदर्शन दिन पर ठेकेदार और नरिंदर पर कुढ़ता रहता। वैसे उनका कुछ ज्यादा कसूर भी नहीं था।

कुछ अधिक महीने नहीं बीते कि लोन की किश्त करने लगी। कर्ज ज़्वाहों ने चक्कर लगाने शुरु कर दिए। लोन वाले तो तनज़्वाह में से काट लेते, किंतु कर्ज की रकम उतारने का कोई वसीला नहीं बन रहा था। कर्जवाला कितनी देर चुप रहता। आखिर उसने बाजार में ढंढोरा पीटना शुरु कर दिया।

अब फिर, शाम को उनकी महफिल जमती, लेकिन सबके चेहरे उतरे-उतरे होते। उनकी एक अकेली उज़्मीद राकेश पर भी, किंतु अभी तो पहाड़ जितना एक साल बाकी था। कब बीए करे, कब नौकरी मिले और नौकरी भी कब आसानी से मिलती है। यदि मिल भी जाए तो उसे कौन सा डीसी नियुक्त हो जाना था।

सुदर्शन को अब महसूस होने लगा था कि मकान बनाकर उसने बला छेड़ ली थी। जिंदगी भर का कर्ज वह सहेज बैठा था।

इस उलझन से निकलने का उसे कोई हीला नजर नहीं आ रहा था। सारे परिवार की खुशी उडंछू हो गई थी। नए मकान के साथ-साथ मानों उदासी ने भी डेरे डाल लिए थे।

फिर एक दिन सुदर्शन ने अपनी पत्नी के कान में एक बात बताई। कर्ज चुकाने की एक बढ़िया योजना थी। जो उसके परेशान-दिमाग को कई दिनों के संघर्ष के बाद सूझी थी।

'यह कैसे हो सकता है? लोग क्या कहेंगे? अपना मकान छोड़कर गांव किराए पर रहें।'

लोगों को मारो गोली। पहले भी लोगों के पीछे लग कर ही ये दिन देखने पड़े हैं। जैसे-तैसे जिंदा तो रहना ही है। वे लोग, जब बाजार में जुलूस निकालते हैं, तब इज्जत कहां चली जाती है? मकान कौन सा कहीं चला जाएगा। किराए पर ही तो देना है। धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा और तब तक राकेश भी बड़ा हो जाएगा।

सुदर्शन कई दिन अपनी बात पर अड़ा रहा। एक दिन मुंह अंधेरे ही गांव से छकड़ा आया। उसमें सामान लादा गया। भां-भां करते मकान को छोड़कर वे गांव की ओर चल दिए।

सुहब-सुहब सैर को निकला ठेकेदार लगे सामान को देखकर दंग रह गया। उसने आगे बढ़कर पूछा

'किधर सुदर्शन बाबू?'

'बदली हो गई है।'

उसने संक्षिप्त सा उत्तर दिया और तेज कदम बढ़ाता आगे बढ़ गए छकड़े के साथ जा मिलने का प्रयास करने लगा।

हिंदी अनुवाद : शाकिर पुरुणार्थी
भोड़ी बाजार, जगराओं, जिला लुधियाना

कौरव-सभा

पंजाबी कहानी : मित्तर सैन मीत
हिंदी अनुवाद : शाकिर पुरुणार्थी

शीशे वाली खिड़की के पास बैठी लड़की को चिंता ने दबोच रखा था। उसे लगा, वह बस में नहीं, दुर्योधन की सभा में बैठी है। बार-बार उसकी निगाह अपने फटे हुए कपड़ों पर जाती, जो रिक्शे के टीन में फंस कर फट गए हैं। कालेज के छात्रों की आंखें उसके फटे कपड़ों के भीतर से झांकते उसके गोरे बदन पर जमी हुई थी। गुस्से से उसका चेहरा सुर्ख हो गया था और नसें तन गई थीं।

असहाय द्रौपदी की भांति वह सिर झुकाए बैठी भी और खिड़की से बाहर झांक कर बाजार के भीड़-भड़क्के में खो जाने का प्रयास कर रही थी।

उसकी दृष्टि चौक में खड़े सिपाही पर जा रुकी। उसे लगा सिपाही भीम बनकर नगन करने वाले दुशासन को चीर कर रख देगा।

उसके मन में खुशी की लहर दौड़ गई। उसकी आंखों ने रिक्शावाले का मुरकस निकलते देखा। वह खिलखिला कर हंस पड़ी।

हंसती हुई लड़की दो देख, बापू सहम गया। उसे लगा उसकी हंसी तो द्रौपदी की हंसी है-जो महाभारत छिड़ा कर रहेगी।

'बापू। वह जा रहा है रिक्शावाला, जिसने मेरे कपड़े फाड़े हैं। वह सिपाही खड़ा है चौक में....कराओ इस मुए की झाड़..।'

बूढ़े के झुर्रियों भरे हाथ को अपने हाथ में दबोचते हुए लड़की ने बूढ़े से इन्साफ की याचना की। एक बार फिर उसने सवारियों की ओर देखा जो और भी शिद्दत से उसके नगन होने की प्रतीक्षा करने लगी थी।

बूढ़ा मुस्कराया। सफेद दाढ़ी में हाथ फेरा, फिर लड़की के कान में उसने नई गीता का सार सुनाया।

'कोई बात नहीं बिटिया। सब्र कर। रिक्शावाले ने तो कपड़े फाड़े ही हैं, सिला लेंगे, लेकिन थाने में शिकायत करने जाएं तो वे भलेमानस तो कपड़े उतार ही लेंगे। तब क्या करेंगे।'

उद्विगन सी हुई लड़की ने बूढ़े की तजुर्बेकार आंखों में झांका। बूढ़ा नहीं यह तो कृष्ण था। दुलार-मुगध सी वह बूढ़े से लिपट गई।

उसे लगा-इस बार बापू ने एक और द्रोपदी को कौरवों की सभा में निर्वस्त्र होने से बचा लिया है।

हिंदी अनुवाद : शाकिर पुरुणार्थी
भोड़ी बाजार, जगराओं, जिला लुधियाना